परामर्श समिति

आचार्य सत्यकाम, कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार, निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 आशीष सक्सेना, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो0 महेश शुक्ला प्रोफेसर, टी0 आर0 एस0 कालेज, ए0 पी0 एस0 विश्वविद्यालय, रीवाँ म0प्र0
डॉ0 रमेश चन्द्र यादव, असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बैसवारा पी0 जी0 कालेज, लालगंज, रायबरेली

इकाई लेखक = डॉ0 रमेश चन्द्र यादव, असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बैसवारा पी0 जी0 कालेज, लालगंज, रायबरेली = 1,2

इकाई लेखक = डॉ0 मनोज कुमार असि. प्रोफेसर, समाजशास्त्र, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज = 3,5,7,11,12

इकाई लेखक = डॉ0 स्मिता असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र, आर्य कन्या पीजी कॉलेज, प्रयागराज, इकाई = 4,6,8,9,10

सम्पादक – प्रो0 ओम प्रकाश भारतीय, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाठयक्रम– समन्वयक डॉ0 मनोज कुमार असि प्रोफेसर, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

2024 (मुद्रित)

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN -

सर्वाधिक सुरक्षित इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट: पाठ्यक्रम सामग्री मे मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आंकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन– उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक– कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक = डॉ० रमेश चन्द्र यादव, असि० प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बैसवारा पी० जी० कालेज, लालगंज, रायबरेली

इकाई-१ मूलभूत शिक्षा के अर्थ एवं प्रकार

इकाई-२ प्रति संस्कृत एवं सांस्कृतिक पूंजी

इकाई लेखक = डॉ० मनोज कुमार असि. प्रोफेसर, समाजशास्त्र, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई-३ प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य – इमाईल दुर्खीम एव पारसन्स

इकाई-५ आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य माइकल एप्पल

इकाई-७ नारीवादी परिप्रेक्ष्य ब्रायन स्केजेस

इकाई-११ शिक्षा बहुलवाद और बहू – संस्कृतिवाद

इकाई-१२ भारत में शिक्षा व्यवस्था

इकाई लेखक = डॉ.स्मिता असि. प्रोफेसर, समाजशास्त्र, आर्य कन्या पीजी कॉलेज, प्रयागराज

इकाई-४ आधुनिक परिप्रेक्ष्य जान डीवी

इकाई-६ सामाजिक पुनरुत्थान पियारे बोर्दयु

इकाई-८ शिक्षा और सामाजिकरण

इकाई-९ शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन

इकाई-१० शिक्षा आर्थिक एंव राजनीतिक पक्ष

MASY -118 (N)
शिक्षा का समाजशास्त्र
पाठ्यक्रम

खण्ड - 1 मूलभूत अवधारणाएं

इकाई–1 मूलभूत शिक्षा के अर्थ एवं प्रकार

इकाई–2 प्रति संस्कृति एवं साँस्कृतिक पूंजी

खण्ड 2 -शिक्षा के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

इकाई–3 प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य– इमाईल दुर्खीम एव पारसन्स

इकाई–4 आधुनिक परिप्रेक्ष्य जान डीवी

इकाई–5 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य माइकल एप्पल

इकाई–6 सामाजिक पुनरुत्थान पियारे बोर्दयु

इकाई–7 नारीवादी परिप्रेक्ष्य ब्रायन स्केजेस

खण्ड 3 -शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया एंव संस्थाये

इकाई–8 शिक्षा और सामाजिकरण

इकाई–9 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन

इकाई–10 शिक्षा आर्थिक एंव राजनीतिक पक्ष

खण्ड-४ शिक्षा व्यावस्था

इकाई–11 शिक्षा बहुलवाद और बहू –संस्कृतिवाद

इकाई–12 भारत में शिक्षा व्यवस्था

खण्ड परिचय : शिक्षा का समाजशास्त्र

खण्ड परिचय शिक्षा का समाजशास्त्र शीर्षक पर यह स्व–अध्ययन सामग्री का लेखन कार्य विभिन्न लेखको द्वारा समाजशास्त्र विषय की स्वःअध्ययन सामग्री MASY 118 का शीर्षक शिक्षा का समाजशास्त्र विषय पर विभिन्न इकाइयों के लेखन कार्य विभिन्न समाजशास्त्री विद्वानों द्वारा किया गया है जिसमें कुल 12 इकाई तथा 4 खंड है ।

इकाई – 1 में 'मूलभूत शिक्षा के अर्थ एवं प्रकार' का लेखन कार्य किया गया है इस इकाई में शिक्षा के अर्थ, प्रकार, नियमित या औपचारिक शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा के विषय में विस्तृत रूप में बताया गया है ।

इकाई – 2 प्रति संस्कृति एवं साँस्कृतिक पूंजी शीर्षक पर लेखक द्वारा लेखन कार्य किया गया है जिसमें संस्कृति पूंजी के लाभ तथा गुड को इस इकाई में व्यक्त किया गया है।

इकाई – 3 प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य – ईमाइल दुर्खीम एवं परसंस के विचार को व्यक्त किया गया है। प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य दुर्खीम का क्या रहा तथा परसंस का क्या रहा है को विस्तृत ढंग से लेखक कार्य किया गया है।

इकाई – 4 आधुनिक परिप्रेक्ष्य जॉन डीवी के विचारों को लेखक द्वारा समेटते हुए समाजशास्त्री ढंग से प्रस्तुत किया है जिसमें जॉन डीवी का जीवन परिचय, शिक्षा के परिपेक्ष, में जॉन डीवी का क्या विचार रहे हैं व्यक्त किया गया है।

इकाई – 5 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य माइकल एप्पल के विचारों को लेखक द्वारा व्यक्त किया गया है जिसमें लेखक इस शीर्षक से संबंधित किताबों का अध्ययन करके एप्पल के विचारों को व्यक्त किया है।

इकाई – 6 सामाजिक पुनरुत्पादन पियारे बोर्दियों के विषय में लेखक ने लेखन कार्य किया है जिसमें बोर्दियों का जीवन परिचय शैक्षिक पृष्ठभूमि जैसी विषय पर लेखन कार्य किया गया है।

इकाई – 7 नारीवादी परिपेक्ष ब्रायन स्केजेस के विचारों को लेखक द्वारा अभिव्यक्त किया गया है जिसमें नारीवादी परिपेक्ष की परिभाषा अवधारणा तथा ऐतिहासिक परिचय को जोड़ते हुए समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से लेखन कार्य किया गया है।

इकाई – 8 शिक्षा और समाजीकरण के शीर्षक पर लेखक द्वारा शिक्षा और समाजशास्त्रीय विकास, प्रशिक्षण जैसी विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत रखा गया है।

इकाई – 9 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत परिभाषा, अवधारणा, विशेषता, भूमिका आदि को इसके अंतर्गत समाहित करके व्यवस्थित ढंग से लेखन कार्य किया गया है।

इकाई – 10 शिक्षा आर्थिक एवं राजनीतिक पक्ष का वर्णन किया गया है।

इकाई – 11 शिक्षा बहुलवाद और बहू संस्कृतिवाद पर अपना विचार व्यक्त है लेखक द्वारा बहुलवाद का विश्लेषण, विशेषता, प्रकार , विषय पर लेखन कार्य किया गया।

इकाई – 12 भारत में शिक्षा शीर्षक पर लेखक कार्य किया गया है जिसमें भारत के शिक्षा व्यवस्था का प्रारंभ कब कहां कैसे हुआ उस समय की शिक्षा व्यवस्था का विश्लेषण और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है।

इकाई–1 मूलभूत शिक्षा के अर्थ एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शिक्षा का अर्थ

1.3 शिक्षा के उद्देश्य

1.4 भारत में शिक्षा का सामाजिक परिवेश

1.5 शिक्षा के प्रकार

- 1.5.1 नियमित या औपचारिक शिक्षा
- 1.5.2 अनौपचारिक शिक्षा
- 1.5.3 नियमित प्रारंभिक शिक्षा

1.6 सारांश

1.7 बोध के प्रश्न

- 1.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 1.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य Objective

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे:

- इस इकाई में शिक्षा का अर्थ परिभाषा एव उद्देश्य को जान सकेंगे।
- आप शिक्षा का सामाजिक परिवेश के विषय मे जानकारी प्राप्त करेंगें।
- शिक्षा के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण कर सकेंगें।
- शिक्षा के मुख्य प्रकारो औपचारिक, अनौपचारिक शिक्षा का आप अध्ययन कर सकेगे।

1.1 प्रस्तावना Introduction

साधारण शिक्षा का अर्थ ऐसी सूचना तक सीमित है जो कि किस मनुष्य के लिए मानव प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है, जो अपने साथ कुछ जन्मजात शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। शिक्षा के द्वारा मानव की इन जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य मानव के जन्म से ही उसके परिवार द्वारा अनौपचारिक रूप से तत्पश्चात विद्यालय भेजकर औपचारिक रूप से प्रारम्भ कर दिया जाता है। विद्यालय के साथ–साथ उसे परिवार एवं समुदाय में भी कुछ–न कुछ सिखाया जाता रहा है और सीखने – सिखाने का यह क्रम विद्यालय छोड़ने के बाद भी चलता रहता है और जीवन भर चलता है। अपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने सिखाने की यह सप्रयोजन प्रक्रिया ही शिक्षा है। इस इकाई में आप शिक्षा के विभिन्न अर्थ यथा–शाब्दिक, संकुचित, व्यापक, विश्लेषणात्मक, समग्र एवं व्यापक अर्थ से अवगत हो सकेंगे साथ ही इन अर्थ को परिभाषित करने वाले विभिन्न दृष्टिकोणों के बारे में जान सकेगें।

1.2 शिक्षा का अर्थ– Meaning of Education

आपने कभी न कभी इस ओर ध्यान दिया होगा कि शिक्षा की संकल्पना है क्या? क्या शिक्षा व्यक्ति के जीवन निर्वाह या समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का एक साधन मात्र है। आखिर क्यों लोगों का मानना है कि शक्षा व्यक्तित्व में उत्कृष्टता लाता है। भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष धातु में अ प्रत्यय लगने से बना है। शिक्ष का अर्थ है 'सीखना' और 'सिखाना'। इसलिए शिक्षा का अर्थ हुआ– सीखने– सिखाने की प्रक्रिया। यदि हम शिक्षा के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द एजूकेशन पर विचार करें तो उसका भी यही अर्थ निकलता है। एजूकेशन शब्द लैटिन भाषा के 'एजूकेटम' शब्द से बना है और एजूकेटम शब्द उसी भाषा के E तथा Duco शब्दों से मिलकर बना है। ए का अर्थ है 'अन्दर' से और ड्यूको का अर्थ है 'आगे बढ़ाना'। इसलिए एजूकेशन शब्द का अर्थ हुआ– बच्चे की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करना। इस प्रकार शिक्षा शब्द का समग्र रूप से अर्थ बालक की जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास है।

शिक्षा समाज में चलने वाली एक प्रक्रिया है। शिक्षा और समाज का आपस में एक जटिल रिश्ता है। शिक्षा समाज को प्रभावित करती है और समाज शिक्षा को। शिक्षा का समाजशास्त्र इन्हीं संबंधों को समझने का प्रयास करता है। शिक्षा का समाजशास्त्र इस बात का अध्ययन है कि सार्वजनिक संस्थान और व्यक्तिगत अनुभव शिक्षा और उसके परिणामों को कैसे प्रभावित करते हैं। यह ज्यादातर आधुनिक औद्योगिक समाजों की सार्वजनिक स्कूली शिक्षा प्रणालियों से संबंधित है, जिसमें उच्च, आगे, वयस्क और सतत शिक्षा का विस्तार शामिल है। शिक्षा समाजशास्त्र की वह शाखा है जो शिक्षा तथा समाजशास्त्र का समन्वित रूप है। शैक्षिक समाजशास्त्र इस बात पर बल देता है कि समाजशास्त्र के उद्देश्यों को शैक्षिक प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त किया जाये।

शिक्षा को अक्सर मनोवैज्ञानिक नजरिये से देखा जाता है या उसकी समस्याओं को कक्षा और परिवार तक सीमित रखकर देखा जाता है। शिक्षा में सुधार लाने की कोशिशों का ध्यान ज्यादा बेहतर पढ़ाने की विधि, ज्यादा रोचक पाठ्यपुस्तक जैसी बातों पर रहता है। यहां पर यह प्रस्तावना है कि इन सब पर समाज के स्वरूप का बहुत गहरा असर पड़ता है और इस बात का भी कि समाज में किस तरह के परिवर्तन आ रहे हैं। उदाहरण के लिए, एक छोटे पैमाने और गतिहीन समाज में शिक्षा से कई ऐसी अपेक्षाएं होंगी जो कि एक बड़े पैमाने और गतिशील समाज की शैक्षिक अपेक्षाओं से अलग होंगी। जैसे कि मानवशास्त्री 'मार्गरेट मीड' ने कहा था, एक गतिहीन समाज में छोटों को वही सीखने की जरूरत होती है जो कि बड़ों को पहले से पता होता है। मगर एक गतिशील समाज में बड़ों को छोटों से सीखने में फायदा है। शिक्षा के उद्देश्य और अर्थ का समाज के स्वरूप से गहरा रिश्ता होता है और वे उस स्वरूप के साथ–साथ बदल भी सकते हैं।

समाजशास्त्रीय नजरिया एक व्यक्तिगत या जीववैज्ञानिक नजरिये से अलग है। शायद इसी में उसकी विशेषता है और महत्त्व है। उदाहरण के तौर पर एक बोर्ड में टॉप करने वाली छात्रा का हो सकता है। उसका मानना होगा कि इसके पीछे उसका परिश्रम और लगन है, जो कि उसकी व्यक्तिगत गुण और विशेषताएं हैं। उसका यह भी कहना हो सकता है कि उसके उत्तीर्ण होने के पीछे उसका अपने विषयों से प्रेम करना है। लेकिन समाजशास्त्री इसके साथ–साथ कुछ ऐसी बातें भी जोड़ेंगे जो शायद उसे सूझी न हों। वे यह कह सकते हैं कि वह ऐसे परिवार और समाज के हिस्से से है जिसमें शिक्षा की बड़ी कदर है। ऐसे परिवार अब सिर्फ लड़कों की ही नहीं, लड़कियों की भी शिक्षा को बहुत महत्त्व देते हैं। यह वह परिवार ही था जिसके कारण वह ऐसे स्कूल में जा सकी जिसमें अच्छी पढ़ाई होती थी। उन्होंने उसे घरेलू कामों से दूर रखा होगा, यह कहते हुए कि वह अपना सारा ध्यान पढ़ाई पर ही लगाए। उसका परिवार ऐसा क्यों था और अन्य परिवारों की तरह क्यों नही ं? समाजशास्त्री इसे कई समाजशास्त्रीय प्रक्रियाओं से जोड़ते हैं जैसे कि भारत के पिछले 50 साल के विकास के दौरान उसका परिवार कहां रहा था? उनका व्यवसाय क्या था ? उनकी जाति और धार्मिक समूह की संस्कृति क्या थी ? उसके आस–पास घरेलू जीवन से बाहर देखने वाली महिलाओं के किस तरह के उदाहरण थे ? उसके स्कूल और माहौल में महिला होने के अर्थ पर किस तरह की बातचीत होती थी ? आदि ।

स्कूल में कुछ बच्चे पीछे क्यों रह जाते हैं ? हर कक्षा में कुछ बच्चे होते हैं जो कि जल्दी सीखते हैं और कुछ जो कि धीरे सीखते हैं। यह आम तौर पर सुनने को मिलता है कि जल्दी सीखने वाले बच्चे दूसरों से ज्यादा बुद्धिमान होते हैं। समाजशास्त्र इसको कुछ अलग ढंग से देखता है। यह देखा गया है कि जब धीरे सीखने वाले को ऐसे स्कूल में डाला जाता है जहां उसे ज्यादा ध्यान और मदद मिलती है तो

उसकी सीखने की गति बढ़ जाती है। कोई बच्चा स्कूल में कैसे करता है, इसका संबंध उसके स्कूल की परिस्थितियों से, उसके सामाजिक परिवेश से और उसके माता–पिता किन सामाजिक समूहों का हिस्सा हैं, इससे भी रहता है। इनके बिना बच्चों के सीखने की प्रक्रियाओं को और उनकी किस तरह से मदद की जा सकती है, इसे समझना कठिन है। शिक्षा में साधन कैसे और किसे मिलते हैं? आज के भारत में अधिकांश बच्चे ऐसे विद्यालयों में पढ़ते हैं जिनमें या तो पढ़ाई होती नहीं या अच्छे तरीके से नहीं होती। मगर हम यह भी देखते हैं कि विश्व के कई देश, हमसे उलट,अपने अधिकांश बच्चों को ठीक–ठाक पढ़ाई उपलब्ध कराने में कामयाब हैं। यह सफलता महज एक अच्छे शिक्षक के मिल जाने के इत्तफाक की बात नहीं है, इसे बनाने में कई सामाजिक प्रक्रियाएं हैं जिन्हें समझना लाभदायक है, जैसे कि राजनैतिक आंदोलन, आर्थिक परिवर्तन, सांस्कृतिक मांगें; इत्यादि। अलग–अलग समाज किस तरह की शिक्षा चाहते हैं? आजकल भारत में बहुत सारे छात्रों से यह कहा जाता है कि सिर्फ इंजनियरिंग और चिकित्सा ही अच्छे कैरियर के विकल्प हैं। लेकिन अगर किसी समाज में दार्शनिक और कवि बनने बंद हो जाते हैं, तो उस समाज में कई तरह की समस्याएं उत्पन्न होनी शुरू हो जाएंगी। दार्शनिक और कवि बनने के लिए भी काफी कुछ सीखना पड़ता है। वह कौन सीखेगा और कौन सिखाएगा? इसके अलावा समाज में और भी कई तरह की जरूरतें होती हैं। जैसे कि एक समाज जिसमें कई तरह के वर्ग और समूह हैं और जिन्हें एक साथ रहना है उन्हें एक ऐसी सांस्कृतिक शिक्षा की जरूरत होगी जो उन्हें आपस में सामंजस्य और मित्राता से रहने में मदद करे। मानव इतिहास में सांस्कृतिक शिक्षा की विशेष भूमिका रही है। कुछ ऐसी परिस्थितियां आई हैं जिनमें सांस्कृतिक और तकनीकी शिक्षा का रिश्ता उल्टा हो गया है। शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं, स्पष्ट है कि इनका संबंध इतिहास और समाज की संरचना से है, और वे स्थिर और अपरिवर्तनीय नहीं हैं। समाज विशेष को समझना और उसमें किस तरह की खींचतान चलती है, शिक्षा के उद्देश्य और नीति तय करने के लिए उसे जानना आवश्यक है।

1.3 शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Education)

जब कोई शिक्षा के उद्देश्यों पर चर्चा करता है या उनका उल्लेख करता है, तो जो बात तुरंत दिमाग में आती है वह है शिक्षा के लक्ष्य या उद्देश्य। इन दो शब्दों का इस्तेमाल कभी–कभी भ्रमित करने के लिए किया जाता है, जिससे प्रशिक्षक या शिक्षार्थी दोनों को भ्रम होता है। 'वेबस्टर इंटरनेशनल डिक्शनरी' के अनुसार उद्देश्य का अर्थ है मिसाइल या किसी हथियार को निशाना बनाना, निर्देशित करना जो मिसाइल को किसी वस्तु या स्थान की ओर इस इरादे से ले जाए कि वह उस पर हमला करे; या किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने प्रयास या प्रयास को निर्देशित करना। शैक्षिक उद्देश्य कमोबेश सैन्य कर्मियों द्वारा शूटिंग अभ्यास में इस्तेमाल किए जाने वाले लक्ष्य होते हैं, क्योंकि वे सटीक दिशा को इंगित करते हैं जिसका शिक्षकों को पूरी या आंशिक रूप से शैक्षिक प्रणाली में पालन करना चाहिए। उद्देश्य किसी के लक्ष्यों को संकीर्ण और विशिष्ट शब्दों में व्यक्त करते हैं । लक्ष्यों को उस लक्ष्य के लिए प्रेरित किया जा सकता है जिस तक कोई डिज़ाइन जाता है। शैक्षिक लक्ष्य वे लक्ष्य हैं जो समाज उस शिक्षा प्रणाली के लिए निर्धारित करता है जिसे वह संचालित करता है। लक्ष्यों को कभी–कभी नागरिकता, लोकतंत्र या राष्ट्रीय इकाई या समान अवसर जैसे व्यापक राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

उद्देश्य का अर्थ है मन में किसी कार्य के उद्देश्य की प्राप्ति या इच्छित लक्ष्य तक पहुँचने का वांछित लक्ष्य। शैक्षिक उद्देश्य शिक्षा की प्रक्रिया के इच्छित परिणाम हैं। वे दर्शाते हैं कि व्यक्ति प्राप्त शिक्षा के

परिणामस्वरूप क्या हासिल कर पाएगा। उद्देश्य जो या तो विशिष्ट शब्दों में या सामान्य शब्दों में बताए जाते हैं, वे कुछ विस्तार से यह बताने का प्रयास करते हैं कि वास्तव में क्या विस्तार से बताएं कि वास्तव में क्या अभिप्रेत है।

शैक्षिक उद्देश्यों को अलग–अलग स्तरों पर अलग–अलग लोगों द्वारा अलग–अलग तरीके से समझा जा सकता है। माता–पिता शिक्षा के उद्देश्य के रूप में कैरियर की संभावनाओं के बारे में सोचते हैं, धार्मिक नेता सोचते हैं कि शिक्षा बच्चों के नैतिक विकास के लिए होनी चाहिए। राजनेता ऐसे विकास की तलाश करते हैं जिनका राष्ट्रीय महत्व हो, जबकि छात्र और शिक्षक जो सीधे तौर पर शामिल होते हैं, उनके उद्देश्य बताए गए उद्देश्यों से बिल्कुल अलग हो सकते हैं।

स्थानीय और तर्कसंगत संबंध शिक्षा के उद्देश्यों में व्यक्ति के स्तर पर कई महिलाएँ शामिल हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उस दर्शन की खोज करने में मदद करना शामिल है जिसमें वह स्वयं भी शामिल है,समुदाय के स्तर पर जो युवा व्यक्ति को भविष्य के साथ तालमेल बिठाने में सक्षम बनाता है। इसमें अपना भोजन खुद उगाकर, अपना घर बनाकर और बाहरी दुनिया से काफी हद तक स्वतंत्र जीवन जीकर स्वतंत्र होने की क्षमता शामिल है शिक्षा का सबसे बड़ा और सबसे ज़रूरी उद्देश्य प्रत्येक नई पीढ़ी को अपने समाज से जोड़ना है। प्रत्येक पीढ़ी को अपने अतीत की विरासत से पूरी तरह अलग नहीं किया जाना चाहिए, निरंतरता की आवश्यकता है, इसलिए शिक्षा की बहुत आवश्यकता है।

संक्षेप में, शिक्षा में निम्नलिखित शामिल होने चाहिए :–

- ❖ एक बच्चे को स्वस्थ, दिमाग और शारीरिक रूप से एक आदमी की पूरी स्थिति तक विकसित करना
- ❖ एकांत पर आधारित बच्चे को आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त करने में मदद करना जो एक अच्छे और उपयोगी जीवन में प्रवेश करेगा, खुद को और प्रवाह को आनंद देगा।
- ❖ एक आदमी को आचरण और ईमानदारी के उच्च मानक करने के लिए कहें, जो शायद उच्च मूल्य की भावना को रोक देगा जो टैम, टेमन उपकरण और सम्मानपूर्वक साथी बना देगा।
- ❖ एक ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना जो साहसी और विवेकशील हो, जो क्षणिक भावनाओं से आसानी से विचलित न हो, ताकि वह देश और अपने लोगों के मामलों में अपना उचित स्थान ले सके।
- ❖ एक व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाने, अपने और अपने परिवेश के साथ उचित रूप से समायोजन करने, अपने आप, अपने साथियों और अपने निर्माता के साथ शांति से रहने के लिए तैयार करना।

1.4 भारत में शिक्षा का सामाजिक परिवेश Social Environment of Education in India

शिक्षा मानव विकास में एक आवश्यक प्रक्रिया है। यह स्कूली शिक्षा से अलग है। स्कूली शिक्षा शिक्षा प्रदान करने के तरीकों में से एक है, जबकि शिक्षा मानव सीखने की संपूर्ण प्रक्रिया से संबंधित है जिसके द्वारा ज्ञान प्रदान किया जाता है, संकायों को प्रशिक्षित किया जाता है और विभिन्न कौशल विकसित किए जाते हैं। शिक्षा को मन पर अनुशासन लागू करने या शिक्षित करने की क्रिया या प्रक्रिया या चरित्र

प्रशिक्षण की प्रक्रिया के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। यह परिवर्तन का एक गतिशील साधन है। शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शिक्षित किए जा रहे व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित या नियंत्रित करे। शिक्षा एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जिसका उपयोग हमेशा मन की सकारात्मक स्थिति को दर्शाने के लिए किया जाता है। 'बामिसाई' (1989) के अनुसार, शिक्षा बौद्धिक क्षमताओं, कौशल और दृष्टिकोणों के विकास की एक संचयी प्रक्रिया है, जो सामान्य रूप से जीवन में कार्रवाई के लिए हमारे विभिन्न दृष्टिकोण और स्वभाव को आकार देते हैं शिक्षा सीखने का मूल सार है जो हमें इस तरह के सीखने के उपयोग से खुद को और समाज के अन्य सदस्यों को लाभ पहुंचाने के लिए स्थायी रूप से सक्षम और तैयार बनाती है। स्कूली शिक्षा नकारात्मक व्यवहार की ओर ले जा सकती है, ज्ञान का नकारात्मक उपयोग किया जा सकता है, सीखना भी नकारात्मक हो सकता है, लेकिन शिक्षा सकारात्मक होनी चाहिए। जिस तरह के स्कूल में पढ़ा जाता है, उसका व्यक्ति के व्यवहार पर असर पड़ता है। कोई व्यक्ति पेन–डकैती, सशस्त्र डकैती, परीक्षा कदाचार, बलात्कार, या उच्च संस्थानों में गुप्त पंथ के सदस्यों की गतिविधियों जैसे नकारात्मक, असामाजिक व्यवहार को अंजाम देने में सफल हो सकता है, जो अर्जित किए गए हैं।

आगे चलकर हम कुछ बुनियादी प्रक्रियाओं को समझने की कोशिश करेंगे जो भारत में शिक्षा का सामाजिक परिवेश बनाती हैं। यह प्रक्रियाएं हमें भारत में शिक्षा और उसके सामने चुनौतियों को ज्यादा अच्छी तरह समझने में मदद करेंगी। हमारे सामने आने वाली कई रोजमर्रा की समस्याएं और कशमकश असल में इन प्रक्रियाओं से जुड़ी हैं। अतः इन मौलिक प्रक्रियाओं को समेटकर हम कई तरह के मुद्दों पर अपनी पकड़ मजबूत कर पाएंगे। बिना यह कहे कि बस यही महत्त्वपूर्ण हैं, मैं निम्न चार प्रक्रियाओं पर बात करूंगा।

- ❖ हमारी बदलती हुई उत्पादन, आदान–प्रदान और उपभोग की व्यवस्थाएं। यह हमारे मौलिक रिश्तों पर प्रभाव डालते हैं और कहा जाता है कि बाजारीकरण और शोषण दोनों को बढ़ाते हुए, पुराने दमन के कई तरीकों से भी आजाद कर रहे हैं। पूंजीवाद एक ताकत है जो कि इन व्यवस्थाओं को बदल रहा है, विशेष रूप से वैश्वीकरण के जरिए दूसरी ताकतों में यह मांग भी है कि नैतिकता और संस्कृति को मुनाफे से ज्यादा महत्त्व दिया जाए। और जनतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था अपने–आपमें कई तरह के दबाव पैदा करती है। शिक्षा प्रणाली लोगों को इन प्रक्रियाओं के बीच झोंकती है और खुद भी उनसे प्रभावित होती है।

- ❖ बढ़ती समाजिक जटिलता। आज के दौर में कई सामाजिक समूहों को एक–दूसरे के साथ रहने के तरीके सीखने की आवश्यकता है। अब न तो वे खुद कहीं भाग सकते हैं और न वे दूसरे को भगा सकते हैं। औद्योगीकरण और आधुनिक राजनीति दोनों ने यह परिस्थिति हमारे सामने लाकर खड़ी कर दी है। अब शिक्षा के सामने सवाल है कि कैसे सभी समूहों को एक सांस्कृतिक डोर में बांधे जो लोगों को जोड़ सके मगर उनकी आजादी और जीवंतता को भी बरकरार रखे।

- ❖ नौकरशाही संगठनों की बढ़त। जैसे–जैसे समाज और उनके अंदर के संगठन बड़े होते जा रहे हैं उन्हें अपना काम करने का तरीका बदलना पड़ रहा है। इस परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण रुख है नियमों का बढ़ना और एक व्यक्तित्व विहीन काम करने का तरीका। शैक्षिक संस्थाओं में भी यह परिवर्तन हुआ है और सरकारी काम करने के तरीके में भी। शिक्षा के कई प्रमुख विवाद इस परिवर्तन से जुड़े हुए हैं।

1.5 शिक्षा के प्रकार Types of Education

शिक्षाविदों के अनुसार शिक्षा के प्रकार निम्नलिखित हैं–

1.5.1 नियमित या औपचारिक शिक्षा

औपचारिक या नियमित शिक्षा वह शिक्षा है, जो जान–बूझकर और विचारपूर्वक दी जाती है। इस शिक्षा को बालक भी जान–बूझकर प्राप्त करता है। इस शिक्षा की योजना पहले ही बना ली जाती हैं और इसका ध्येय भी निश्चित कर लिया जाता है। इसमें बालक को निश्चित समय पर और नियमित रूप से निश्चित ज्ञान दिया जाता है। यह शिक्षा विशेष प्रकार की संस्थाओं में दी जाती है। इसका आरम्भ अनियमित शिक्षा के बाद होता है। साधारणतया जब बालक, वयस्क हो जाता है, तब इसका अन्त हो जाता है। इस शिक्षा का प्रमुख स्थान 'स्कूल' है। 'स्कूल' के अतिरिक्त,चर्च, पुस्तकालय, अजायबघर, चित्र–भवन और पुस्तकें भी नियमित शिक्षा के साधन (Agencies) हैं। इस शिक्षा को चेतन शिक्षा (Conscious Education) भी कहते हैं।

हमारे वर्तमान समाज में, यह कहावत कि शिक्षा एक मौलिक मानव अधिकार है, अब सुनने वालों के लिए नई बात नहीं रह गई है। हालाँकि सभी माता–पिता इस बात से सहमत नहीं होंगे कि उनके बच्चे स्कूली शिक्षा के हकदार हैं। नाइजीरिया की कुछ जनजातियों में, विशेष रूप से जहाँ अंधविश्वास प्रबल है, वे औपचारिक शिक्षा को अंधविश्वास के दुश्मन के रूप में देखते हैं। शिक्षित लोग कभी–कभी उन बुजुर्गों के अधिकार को स्वीकार करने में अनिच्छुक महसूस करते हैं जो अशिक्षित हैं। सार्वभौमिक औपचारिक शिक्षा में बहुत सी बाधाएँ आई हैं। कुछ लोगों ने सोचा कि शिक्षा की अनौपचारिक प्रणाली पर्याप्त है कि परिवार से सभी आवश्यक शिक्षा प्राप्त की जा सकती है और समुदाय की परंपराओं, रीति–रिवाजों और लोक–प्रेम से प्राप्त ज्ञान के माध्यम से और आजीविका प्राप्त करने के लिए प्राथमिक कौशल का प्रदर्शन करने की क्षमता के माध्यम से एक संतोषजनक जीवन जीया जा सकता है। ऐसे समाज में जहाँ औपचारिक शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी जाती है, वहाँ उच्च शिक्षित अल्पसंख्यक निरक्षर बहुमत पर शासन करते देखे गए हैं। निरक्षर लोग शारीरिक या अकुशल काम में लगे रहते हैं जहाँ उनके लिए औपचारिक शिक्षा अनावश्यक है। आजकल विकास की आवश्यकता को देखते हुए औपचारिक शिक्षा के माध्यम से लोगों को प्रशिक्षित करना प्राथमिकत की मांग है।

औपचारिक शिक्षा एक योजनाबद्ध और संरचित प्रकार की शिक्षा है। शिक्षण विशेष रूप से निर्मित, उद्देश्यपूर्ण रूप से डिज़ाइन किए गए संस्थानों जैसे कि स्कूल विशेष रूप से प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालय (निजी और सार्वजनिक), विकलांगों के लिए विशेष विद्यालय, कॉलेज, शिक्षा महाविद्यालय, प्रौद्योगिकी महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में किया जाता है। पढ़ाए जाने वाले निर्देशों को पाठ्यक्रम, कार्य योजना, पाठ्यक्रम की रूपरेखा, पाठ योजना और समय–सारिणी के उपयोग के माध्यम से सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध और अच्छी तरह से संरचित किया जाता है। प्रशिक्षक एक प्रमाणित और योग्य कर्मचारी होता है जो आंतरिक और बाहरी दोनों प्रशासनिक निकायों की देखरेख में अपना शिक्षण प्रदान करता है। औपचारिक शिक्षा के प्रत्येक चरण के अंत में, प्रशिक्षुओं की उपलब्धियों को मान्यता देने के लिए प्रमाण पत्र प्रदान किया जाता है। औपचारिक शिक्षा की विशेषता इसकी विशेष विशेषताओं से भी होती है जो पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित सामग्री के साथ अत्यधिक संरचित कार्यक्रम हैं। यह निजी और सार्वजनिक प्राथमिक और

माध्यमिक विद्यालयों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों दोनों द्वारा प्रदान किया जाता है। इसका दूसरा पक्ष पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित सामग्री और विधि में कुछ लचीलेपन के साथ संरचित कार्यक्रम द्वारा मध्यम है। यह विशेष स्कूलों, अरबी स्कूलों और प्रदर्शन स्कूलों द्वारा भी प्रदान किया जाता है। औपचारिक शिक्षा को पश्चिमी शिक्षा भी कहा जाता है।

1.5.2 अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा से भिन्न है। इसमें कोई विशिष्ट शिक्षक नहीं होता, कोई लिखित पाठ्यक्रम नहीं होता, किसी विशिष्ट अवधि में कोई परीक्षा नहीं होती। यह औद्योगिक नहीं है, बल्कि एक साधारण समाज में उपयोग की जाती है। अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा प्रणाली की संरचना के बाहर किसी भी संगठित शिक्षण गतिविधि को दर्शाती है। इस प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य समुदाय में बच्चों, युवाओं या वयस्कों के विशेष समूहों की विशिष्ट शिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करना है । इसमें विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक, शैक्षिक और सामाजिक–व्यक्तिगत गतिविधियाँ शामिल हैं जैसे कि उपचारात्मक, निरंतर; कौशल प्रशिक्षण, प्रसवपूर्व देखभाल, स्वास्थ्य और परिवार नियोजन, सिलाई, हेयर–ड्रेसिंग, टाई और डाई, नाई, ऑटोमोबाइल इंजीनियरिंग, पेंटिंग, बढ़ईगीरी जैसे व्यावसायिक काम के लिए प्रशिक्षुता, साथ ही कृषि विस्तार; कार्यात्मक सांस्कृतिक और नागरिक शिक्षा, युवाओं और वयस्कों के लिए साक्षरता कार्यक्रम शिक्षा के इस तरीके के तहत, जो सीखा जाता है वह संरचित होता है लेकिन औपचारिक शिक्षा की तरह सख्त नहीं होता, इसलिए स्थान, सीखने के तरीके और प्रशिक्षक या प्रशिक्षक के लिए अधिक लचीलापन होता है। अनौपचारिक शिक्षा की विशेषता यह है कि यह शिथिल रूप से संरचित कार्यक्रम है जिसमें जनता अपनी इच्छानुसार भाग लेने के लिए स्वतंत्र है। इसके प्रकारों में सरकारी सूचना इकाइयाँ, विस्तार सेवाएँ, सामाजिक विकास कार्यक्रम और ग्रामीण विकास कार्यक्रम शामिल हैं। अन्य प्रकार मध्यम रूप से संरचित शिक्षण कार्यक्रम हैं जो संस्थानों द्वारा संचालित किए जाते हैं जिनका छात्रों के साथ केवल निर्धारित संपर्क लिंक हो सकता है। उदाहरण जहाँ ये होते हैं वे हैं पत्राचार विद्यालय, वयस्क शिक्षा कार्यक्रम, सामुदायिक केंद्र जहाँ व्यावसायिक प्रशिक्षण होता है, उदाहरण के लिए, एक अशिक्षित समाज में अनौपचारिक शिक्षा का प्रचलन है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इसमें औपचारिक शिक्षा प्रणाली और औपचारिक शिक्षा प्रणाली की विशिष्ट विशेषताएं नहीं हैं। उदाहरण के लिए, औपचारिक स्थिति या कक्षा या किसी विशेष विषय के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए पाठ्यक्रम की तरह कोई विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षक नहीं होता है। हालाँकि, बच्चा एक चरण से दूसरे चरण में बढ़ने के साथ सीखता है। कभी–कभी इसे पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के रूप में संदर्भित किया जाता है । अनौपचारिक शिक्षा में स्वाभाविक रूप से आने वाली शिक्षा शामिल होती है। यह न तो योजनाबद्ध है और न ही संरचित है। कोई विशिष्ट प्रशिक्षक नहीं है। पर्यवेक्षण की आवश्यकता नहीं है; अधिकांश सीखना अचेतन और अनैच्छिक है। उदाहरण के लिए, बच्चे को अपने परिवार, धार्मिक संबद्धता, सहकर्मी समूहों, दोस्तों, संघ के अनुभव, जनसंचार माध्यमों, सहकारी और पर्यावरण से विभिन्न प्रकार की शिक्षा का अनुभव होता है। अधिकांश शिक्षा पूरी तरह से असंरचित शिक्षा होती है जिसे व्यक्ति अपनी इच्छा से अपनी रुचि के अनुसार अपनाने के लिए स्वतंत्र होता है जबकि सहकारी समितियों, समाजों, धार्मिक, अनुप्रयोग, संघों से प्राप्त शिक्षा स्थापित निकायों द्वारा अपने उद्देश्यों और हितों को आगे बढ़ाने के लिए आयोजित की जाती है। अनौपचारिक शिक्षा का विकास सृष्टि के आरंभ से ही हो गया था ।

जब कोई समाज साक्षर हो जाता है, तब भी अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली विद्यमान रहती है। गैर–साक्षर समाज में शिक्षा, सामान्य समाज से भिन्न होती है ।

- ❖ अनौपचारिक शिक्षा की प्रकृति सामूहिक सामाजिक होती है। यह लोगों के सामाजिक जीवन और समुदाय के आर्थिक विकास से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है। इसका मुख्य उद्देश्य नैतिकता की शिक्षा देना होता है।
- ❖ यह इस अर्थ में उपयोगितावादी और कार्यात्मक है कि समाज इसके साधनों को जानता है और अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली के उत्पाद कभी भी बेरोजगार नहीं होते। वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही उत्पादन करते हैं क्योंकि वे सिद्धांत के बजाय व्यावहारिकता में अधिक विश्वास करते हैं।
- ❖ यह बच्चे के शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक विकास के क्रमिक चरणों पर भी आधारित है।

यद्यपि अनौपचारिक शिक्षा प्रमाण–पत्रों के पुरस्कार से जुड़ी नहीं है, लेकिन इसका प्रभाव व्यक्ति पर अधिक स्थायी होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के विपरीत जो एक विशेष समय के लिए एक विशिष्ट संदर्भ में योजनाबद्ध और संरचित सीखने के अनुभवों तक ही सीमित होती है, अनौपचारिक शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अपने स्वयं के साधनों द्वारा अपनी गति से अपना रास्ता अपनाती है।

1.5.3 नियमित प्रारंभिक शिक्षा

नियमित शिक्षा वह है, जो जान–बूझकर और विचारपूर्वक दी जाती है। इस शिक्षा को जान–बूझकर प्राप्त करता है। शिक्षा की योजना पहले ही बना ली जाती है और इसका ध्येय तय कर लिया जाता है। इसमें बालको को निश्चित समय पर और नियमित रूप से निश्चित रूप से ज्ञान दिया जाता है। यह शिक्षा विशेष प्रकार की संस्थाओ दी जाती है। इस शिक्षा का प्रमुख स्थान स्कूल है।

यह शिक्षा बालक के जन्म से कुछ, मास पहले ही उपलब्ध हो जाती है। इसीलिए होने वाली माताओं से आशा की जाती है कि वे अपने आचरण को अच्छा बनाए रखें । अनियमित शिक्षा बालक को अनायास और आकस्मिक रूप से प्राप्त होती है। इस शिक्षा को बालक अपने मित्रों के साथ, खेल के मैदान मे बातचीत के दौरान हर समय किसी न किसी रूप में प्राप्त करता है। इस शिक्षा की कोई निश्चित योजना, कोई निश्चित स्थान, कोई निश्चित समय और कोई निश्चित नियम नहीं होता है। इस शिक्षा के साधन हैं– परिवार, धर्म, समाज, राज्य, रेडियो, समाचार पत्र, खेल के क्षेत्र आदि।

- ❖ प्रत्यक्ष शिक्षा – इस शिक्षा को व्यक्तिगत शिक्षा भी कहा जाता है । यह शिक्षा छात्र और शिक्षकों के बीच होती है । अध्यापक अपने, ज्ञान, आदर्श, कर्तव्य ,और उद्देश्यों से छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।
- ❖ अप्रत्यक्ष शिक्षा– इस शिक्षा को अवैयक्तिक शिक्षा भी कहा जाता है। जब छात्र पर अध्यापक के उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता है,तब वह विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष साधनों को अपनाकर छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।
- ❖ व्यैक्तिक शिक्षा – व्यैक्तिक शिक्षा का संबंध केवल एक बालक से होता है। यह शिक्षा उसको व्यक्तिगत रूप से और अकेले दी जाती है। शिक्षा देते समय उसकी रुचि, प्रकृति, योग्यता और व्यक्तिगत विभिन्नता का पूरा–पूरा ध्यान रखा जाता है।

- ❖ सामूहिक शिक्षा– सामूहिक शिक्षा का संबंध एक बालक से न होकर बालकों के समूह से होता है बहुत से बालकों के एक समूह मे कक्षा में एक साथ शिक्षा दी जाती है इस शिक्षा से बालकों का व्यक्तिगत रुचि प्रवृत्तियां योग्यताओं और विभिन्नताओं का कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।
- ❖ सामान्य शिक्षा– सामान्य शिक्षा को उदार शिक्षा भी कहते हैं आजकल के भारतीय और हायर सेकेंडरी स्कूलों में इसी प्रकार की शिक्षा दी जाती है यह शिक्षा बालकों को केवल सामान्य जीवन के लिए तैयार करती है।
- ❖ विशिष्ट शिक्षा– विशिष्ट शिक्षा किसी विशेष लक्ष्य को ध्यान में रखकर दी जाती है इसका उद्देश्य बालकों को किसी विशेष व्यवसाय या निश्चित कार्य के लिए तैयार करना होता है। दूरवर्ती शिक्षा या दूरस्थ शिक्षा इसका अभिप्राय है दूर से दी जाने वाली शिक्षा इसमें सीखना वाला छात्र तथा सीखने वाला अध्यापक आमने–सामने नहीं होते हैं इसमें सीखना व सीखना बिना किसी बाधा के लगातार चलता रहता है जबकि शिक्षक एवं छात्र एक दूसरे से दूर रहते हैं इसमें छात्र अपनी सुविधा का प्राप्त समय के अनुसार अपनी गति से शिक्षा प्राप्त करता चलता है।
- ❖ सतत शिक्षा– सतत शिक्षा बुनियादी से सिद्धांत पर आधारित है किसी व्यक्ति की शिक्षा उसी दिन समाप्त नहीं होती जिस दिन वहां विद्यालय या कॉलेज या विश्वविद्यालय से प्रमाण पत्र या उपाधि प्राप्त कर ले उसकी शिक्षा सतत चलती रहती है जो आजीवन शिक्षा व शैक्षिक प्रयास है जिसका सीधा संबंध ज्ञान एवं कौशलों की प्राप्ति से है जो शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं से जुड़े हैं।

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने शिक्षा के अर्थ, संकल्पना, उद्देश्य आदि के बारें में विश्लेषण किया है। प्रारम्भिक तौर पर शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य एवं सामाजिक परिवेश को स्पष्ट किया गया है। हमने पाया कि शिक्षा एक विस्तृत संकल्पना है जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर आधारित है। इसके बाद हमने शिक्षा के विभिन्न प्रकारों की छान–बीन की जिसके अन्तर्गत औपचारिक, अनौपचारिक और नियमित प्रांरम्भिक शिक्षा का विश्लेषण किया गया।

1.7. बोध के प्रश्न

1.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के अर्थ एवं उद्देश्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. भारत में शिक्षा के सामाजिक परिवेश का विस्तृत विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. औपचारिक शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- **Mead, Margaret**. (1970) Culture and Commitment a Study of the Generation Gap. [1st ed.]. Garden City, N.Y: Published for the American Museum of Natural History, Natural History Press.
- **Rao, S. Srinivasa**. (2013). "Structural Exclusion in Everyday Institutional Life: Labelling of Stigmatized Groups in an IIT." In Sociology of Education in India: Changing Contours and Emerging Concerns, edited by Geetha Nambissan and S. Srinivasa Rao, 199-223. New Delhi: Oxford University Press.
- **Awoniyi, T. A.** (1976): Principles and Practice of Education. Great Britain: Hodder and Stoughton Ltd.
- **Bamisaiye, R**. (1989): A Practical Approach to Philosophy of Education, Ibadan: AMD Publishers.
- **Bayne, H. J**. (1977): The Teacher and His Pupils. London: Oxford University Press.
- **Farrant, J.** S. (1982): Principles and Practice of Education England: Longman Group Ltd.
- **Federal Republic of Nigeria** (1981): National Policy on Education (Revised). Yaba, Lagos: NERC Press.
- **Wilkins, E**. (1979): Education in Practice London: Evans Brothers Ltd.

इकाई 2 प्रति संस्कृति एवं साँस्कृतिक पूँजी

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 साँस्कृतिक पूँजी शब्द की उत्पत्ति

2.3 संस्कृति प्रति संस्कृति और साँस्कृतिक पूँजी

2.4 साँस्कृतिक पूँजी के लाभ

2.5 पूँजी के रूप मे पीयरे बोर्दियों के विचार

2.6 सामाजिक और साँस्कृतिक पूँजी

2.7 सारांश

2.8 बोध प्रश्न

2.8.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

2.8.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप समझ सकेंगें।

- ❖ प्रति संस्कृति एवं साँस्कृतिक पूँजी को आप विस्तृत रूप मे समझ सकेंगें।
- ❖ साँस्कृतिक पूँजी कि व्याख्या को समझ सकेंगें।
- ❖ पीयरे बोर्डियों साँस्कृतिक पूँजी की अवधारणा को आप समझ सकेंगें।
- ❖ सामाजिक एंव साँस्कृतिक पूँजी को समझ सकेंगें।
- ❖ साँस्कृतिक तथा सामाजिक पुर्नरुत्पादन की अवधारणा की संकल्पना को जानकारी प्राप्त करेंगें।

2.1 प्रस्तावना

साँस्कृतिक पूँजी सामाजिक वर्ग से जुड़ी हुई है हालांकि यह वर्ग के समान नहीं है। कुछ सामाजिक वर्गों के पास कम या ज्यादा साँस्कृतिक पूँजी हो सकती है और समय के साथ इसे संचित करने के लिए बेहतर/बुरी स्थिति में हो सकते हैं। साँस्कृतिक पूँजी क्या है और इसे कैसे संचित किया जा सकता है, इस बारे में दृष्टिकोण और विचार विकसित करने में वर्ग की भूमिका हो सकती है। साँस्कृतिक पूँजी में न केवल यह शामिल होता है कि कोई व्यक्ति किस प्रकार का संगीत सुनता है, कौन से टीवी/नेटफ्लिक्स शो देखता है, उसके शौक और पसंद क्या हैं, बल्कि इसमें अन्य लोगों की पसंद, चुटकुले, विशेषताएं, शौक और पहनावे की जानकारी भी शामिल होती है। अन्य समूहों के स्वाद और जीवनशैली के बारे में यह जानकारी किसी व्यक्ति को दूसरे समूह या संस्कृति के किसी व्यक्ति के साथ बातचीत करने में बढ़त दिला सकती है और उन्हें इन अन्य समूहों में आसानी से घुलने मिलने की अनुमति दे सकती है।

साँस्कृतिक पूँजी होना अच्छा है क्योंकि यह लोगों के सामाजिक जीवन को नाटकीय रूप से बेहतर बनाने और अन्य पृष्ठभूमि और जीवन शैली वाले लोगों के बारे में उनकी समझ को व्यापक बनाने के लिए तर्क दिया जाता है। हालाँकि, यह वास्तविक जीवन के परिणामों पर बहुत अधिक प्रभाव डालता है जैसे कि नौकरी पाने की संभावनाएँ यह हो सकता है कि एक साझा शौक के माध्यम से साक्षात्कार संबंध किसी को समान योग्यता और अनुभव वाले किसी अन्य व्यक्ति की तुलना में नौकरी दिला सकता है, एक रोमांटिक साथी ढूँढना दो व्यक्तियों के बीच विवाह के लिए तकनीकी शब्द जिनकी शिक्षा या सामाजिक स्थिति का स्तर समान है दोनों साँस्कृतिक पूँजी से जुड़े हैं, या किसी विशेष स्कूल/विश्वविद्यालय में अच्छी तरह से समायोजित महसूस करना ।

2. 2 साँस्कृतिक पूँजी शब्द की उत्पत्ति

साँस्कृतिक पूँजी यह वह ज्ञान, पूँजी अथवा संबंधो का समुच्चय है जो किसी व्यक्ति को अपने जीवन में मिलते है तथा जिनके द्वारा वह जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है, यदि दो अन्यथा समान लोगो के पास इस पूँजी की मात्रा में भेद है तो उनकी सफलता की मात्रा में भी भेद होगा। जाने–माने फ्रांसीसी

समाजशास्त्री और दार्शनिक पियरे बोर्डियों (1930–2002) ने दुनिया भर के चिन्तन को प्रभावित किया। पूँजी के रूप पर उनका चिन्तन शिक्षा जगत में बहुत प्रभावशाली रहा है ।

फ्रांस के समाज विज्ञानी और दार्शनिक पियरे बोर्डियों ने 1970 में साँस्कृतिक पूँजी की संकल्पना दी थी। उन्होंने इसे विस्तार से दिखाया भी था कि कैसे साँस्कृतिक पूँजी के माध्यम से समाज में पावर निर्मित की जाती है, इस पॉवर को कैसे अगली पीढ़ियों को स्थानांतरित किया जाता है और कैसे उच्च, निम्न आदि सामाजिक वर्गों को निर्धारित करने में इस पॉवर की बड़ी भूमिका होती है। ज्यादातर लोगों को लगता है कि रुपए पैसे अथवा आर्थिक संपत्ति से ही सामाजिक संरचना निर्मित होती है खास तौर से मार्क्सवादी चिंतकों ने जाति, धर्म, लिंग आदि की तुलना में संपत्ति को अतिरिक्त महत्व देकर आर्थिक पूँजी को बहुत बड़ा बना दिया। यह सही है कि जिसके पास ज्यादा धन होता है वह ज्यादा शक्तिशाली होता है लेकिन यह धन सिर्फ संपत्ति के रूप में होता है यह समझ लेना संस्कृति, भाषा, नस्ल आदि तमाम दूसरे धनों के बल पर संपत्ति रूपी धन को पा लेने वाले शक्तिशाली लोगों के इशारे पर नाचते जाना है। हमारे मानस को तैयार करने में पैसे वाले पूँजीपतियों की तुलना में धर्म, संस्कृति, भाषा रूपी पूँजीपतियों की भूमिका कहीं बड़ी रही है। किसी व्यक्ति को यह कह देना कि इसकी पीढ़ी में आज तक कोई पढ़ नहीं पाया तो यह भी पढ़ नहीं सकता, कि समझदारी इसके जीन में नहीं है या यह कह देना कि अमुक व्यक्ति सिर्फ इसी काम के लिए बना है या क्षेत्र–जाति के आधार पर कर्म का निर्धारण कर देना भी एक पूँजीवादी साजिश का हिस्सा है।

साँस्कृतिक पूँजी एक अजीब सा शब्द है शायद यही कारण है कि समाजशास्त्र के व्याख्यान कक्ष के बाहर बहुत से लोग अपनी दैनिक बातचीत में इसका बहुत ज़्यादा इस्तेमाल नहीं करते। यहाँ, मैं बताता हूँ कि यह क्या है, समाज पर इसके क्या प्रभाव हैं? साँस्कृतिक पूँजी लोगों के करियर की संभावनाओं, किसी विशेष सामाजिक वर्ग के साथ उनकी पहचान, साथ ही दोस्ती और सामाजिक संपर्क विकसित करने और पोषित करने की उनकी क्षमता को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत लक्षणों और प्रथाओं को परिभाषित करती है। यह वाक्यांश खुद प्रसिद्ध अकादमिक समाजशास्त्री पियरे बोर्डियों से आया है, और उनके 1986 के निबंध 'द फॉर्म्स ऑफ कैपिटल' में प्रकाशित हुआ है।

उभरती साँस्कृतिक राजधानी एक आधुनिक, महानगरीय, शहरी रूप वाली साँस्कृतिक राजधानी है। यह साँस्कृतिक राजधानी मुख्य रूप से इंटरनेट के माध्यम से उपलब्ध है ब्लॉग, यूट्यूब, मीम्स, वाइन और इंस्टाग्राम ट्रेंड। यह हर रोज़ के अनुभव को हस्तांतरणीय साँस्कृतिक राजधानी में बदल देता है लोगों को मीम या वायरल वीडियो या गाने के साझा ज्ञान के माध्यम से जोड़ता है।

2.3 सँस्कृति, प्रति संस्कृति और साँस्कृतिक पूँजी

प्रति संस्कृति या प्रतिरोधी संस्कृति एक प्रकार की उप-संस्कृति है, जो मुख्य संस्कृति जिसका कि वह उपभाग है, कुछ महत्वपूर्ण लक्षणों को अस्वीकार या उनका विरोध करती है। कभी–कभी समाज के कुछ एक सदस्य अपनी संस्कृति के सामान्य मानदण्डों, नैतिक मूल्यों, आदर्शों की अवहेलना या उल्लंघन करने लगते है। ऐसी स्थिति प्रतिरोधी संस्कृति या प्रतिरोधी संस्कृति अपनाने वाला समूह विरोधी तरीकों, विचारों व नियमों को समान्य या अपनी ही मुख्य संस्कृति से अधिक महत्व देता है।

1960 के दशक में अमेरिका में भौतिकवाद, वियतनाम के युद्ध, सत्ता के प्रति भक्ति–भाव, रूढ़िवादी जीवनशैली जैसे मुख्य धारा संस्कृति के विरोध में उत्पन्न आन्दोलनों को प्रतिरोधी संस्कृति का परिचायक कहा जा सकता है।

साँस्कृतिक पूँजी दुनिया को बदल सकती है, और हम इस बात पर विचार कर रहे हैं कि लंदन में युवाओं के लिए ऐसा कैसे किया जाए उन्हें तेजी से प्रतिबंधित और अस्वस्थ जीवन से बाहर निकलने में मदद करना। विश्वविद्यालय में, मैंने पियरे बोर्डियो नामक एक फ्राँसीसी समाजशास्त्री को खोजा। बोर्डियो रोज़मर्रा की ज़िंदगी के पर्यवेक्षक थे। उन्हें सामाजिक परिवर्तन और रोज़मर्रा की ज़िंदगी के संघर्षों और एकजुटता में दिलचस्पी थी। उनका मानना था कि आर्थिक और सामाजिक पूँजी के अलावा, एक व्यक्ति के पास साँस्कृतिक पूँजी होती है शिक्षा, ज्ञान, भाषा, आदतें जो बचपन में सबसे पहले विकसित होती हैं और समय के साथ जीवन में आगे बढ़ने की क्षमता को प्रभावित करती हैं। उनकी परिकल्पना अनिवार्य रूप से यह थी कि साँस्कृतिक पूँजी समाज में सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखती है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वित्तीय पूँजी वाले व्यक्ति की तरह ही साँस्कृतिक पूँजी वाले व्यक्ति की पीढ़ियां भी उससे लाभान्वित होती रहती हैं। आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के बावजूद उनके बच्चे शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में अधिक सफल होते हैं। मूल्य, नैतिकता, सौंदर्य के प्रतिमान, सभ्यता आदि के मानक, आर्थिक पूँजी की तुलना में साँस्कृतिक पूँजी से अधिक संचालित होते हैं। सामाजिक संपर्क बनाने, शादी विवाह एवं अन्य प्रकार के रिश्ते बनाने, नौकरी पाने, सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने जैसे कार्यों में इस पूँजी की हैसियत रुपये पैसे से अधिक होती है। यहां तक कि सत्ता केंद्रों, सरकारों और बड़े संस्थानों में भी ऐसे लोगों को ही महत्व मिलता है और पीढ़ी दर पीढ़ी यह चीज आगे बढ़ती चली जाती हैं। इतिहास बताता है कि मुगल शासन काल में ईरान से आने वाले शेख और सैयद लोगों की संतानों को बड़े पदों पर आसानी से जगह मिल जाती थी। साँस्कृतिक पूँजी और उससे निर्मित संबंधों को आर्थिक पूँजी में आसानी से बदला जा सकता है और आर्थिक पूँजी तथा साँस्कृतिक पूँजी एक दूसरे का न केवल समर्थन करती हैं बल्कि निर्माण भी करती है। और इन सब कार्यों में सबसे बड़ी सहायक और वाहक की भूमिका निभाने वाली शक्ति है भाषा। उदाहरण के लिए भारत में सत्ता संस्थानों को संचालित करने वाली यह भाषा कभी संस्कृत थी, फिर फारसी हुई, इन दिनों अंग्रेजी है। लेकिन भाषा का पूँजीवादी चरित्र सिर्फ इन मुख्य भाषाओं तक सीमित नहीं होता। प्रमुख भाषाओं के भीतर बहुस्तरीय रूपों में दूसरी भाषाएं भी काम कर रही होती हैं। कहीं पर पूँजीवादी भाषा का काम हिंदी कर रही होती है तो कहीं बांग्ला या तमिल कर रही होती है। बहुत दिन नहीं हुए जब उडिया या असमिया को बांग्ला से अलग भाषा का दर्जा पाने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा था। आज भी बहुत सारी आदिवासी भाषाएं और दूसरी भाषाएं पूँजीवादी मानसिकता का दंश झेल रही हैं।

संक्षेप में, साँस्कृतिक पूँजी को लोगों की प्रस्तुति, कपड़े, भाषा, शौक और लोकप्रिय और उच्चस्तरीय संस्कृति के ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है। उच्चस्तरीय संस्कृति को प्रदर्शन कला, शास्त्रीय संगीत, थिएटर और ओपेरा में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए इन विशेषताओं और गतिविधियों संबंधित पत्रिकाओं, पुस्तकों, फिल्मों, संगीत और कला के स्वामित्व के साथ के बारे में अक्सर तर्क दिया जाता है कि वे लोगों के शैक्षणिक प्रदर्शन, उनकी दोस्ती की गुणवत्ता, समाज में उनके एकीकरण, साथ ही उनके कैरियर की संभावनाओं को प्रभावित करते हैं।

2.4 साँस्कृतिक पूँजी के लाभ

साक्ष्य बताते हैं कि परिवारों के माध्यम से पारित साँस्कृतिक पूँजी बच्चों को स्कूल में बेहतर प्रदर्शन करने में मदद करती है। शिक्षा प्रणाली साँस्कृतिक पूँजी प्राप्त करके विकसित ज्ञान और सोचने के तरीकों को महत्व देती है, दोनों अमूर्त और औपचारिक। वयस्कों के रूप में, साँस्कृतिक पूँजी व्यक्तियों को अन्य वयस्कों के साथ नेटवर्क बनाने में मदद करती है जिनके पास ज्ञान और अनुभवों का एक समान भंडार होता है, और जो बदले में उच्च–भुगतान वाले व्यवसायों और प्रतिष्ठित नेतृत्व भूमिकाओं तक पहुंच को नियंत्रित करते हैं।

2.5 पूँजी के रूप मे पीयरे बोर्डियो के विचार

सामाजिक जगत एक संचित इतिहास है और अगर हम इसे परस्पर स्थानापन्न कणों की तरह दिखाई देने वाले वाहकों के बीच क्षणिक यांत्रिक साम्यों की एक विच्छिन्न श्रृंखला में सीमित नहीं कर देना चाहते हैं तो हमें पूँजी और उसके साथ–साथ संचय की अवधारणा का भी लाजिमी तौर पर सहारा लेना होगा और उसके सारे प्रभावों की पड़ताल करनी होगी। पूँजी संचित श्रम है भौतिक रूप में या "समाविष्ट" , मूर्त रूप में जिसका जब किसी कर्ता या कर्ताओं के समूह द्वारा निजी और फलस्वरूप खालिस व्यक्तिगत हस्तगतकरण कर लिया जाता है तो वह उनके लिए मूर्त या जीवित श्रम के रूप में सामाजिक ऊर्जा के हस्तगतकरण का साधन बन जाती है। यही वह चीज है जिसके चलते समाज का खेल और जिसमें आर्थिक खेल भी शामिल है हर पल किसी चमत्कार की गुंजाइश पर टिका तीर–तुक्के का खेल नहीं रहता। जिस कैसिनो में हर खिलाड़ी के पास पलक झपकते बहुत सारा पैसा जीत लेने की संभावना रहती है और इसलिए जो जीतने वाले की सामाजिक हैसियत को लगभग तत्क्षण बदल डालता है, और जिसके पिछले पासे में जीता गया दांव अगले पासे के साथ गंवाया भी जा सकता है, ऐसा केसीनो/जुआ दोषरहित प्रतिस्पर्धा या अवसरों की दोषरहित समानता के इस काल्पनिक जगत की बड़ी सटीक तस्वीर है। यह एक ऐसा जगत है जिसमें कोई त्वरण नहीं है, जहां कोई संचय नहीं है, जहां विरासत या पुश्तैनी संपत्ति नहीं है, जिसमें हर पल पिछले पल से पूरी तरह आजाद रहता है, जहां हर सिपाही के पास सेनापति का ध्वजदंड होता है, जहां हर पुरष्कार हरेक की पहुंच के भीतर होता है और जिसके सहारे कोई भी व्यक्ति किसी भी क्षण कुछ भी बनने की उम्मीद रख सकता है। पूँजी, जो कि अपने वस्तुकृत या मूर्त रूप में संचय के लिए समय लेती है और मुनाफा पैदा करने और यथारूप अथवा विस्तृत रूप में अपने पुनरुत्पादन की संभावना से लैस होती है, उसके भीतर यथारूप कायम रहने की एक प्रवृत्ति होती है। यह पूँजी चीजों की वस्तुनिष्ठता में उत्कीर्ण एक ऐसा बल है जिसके चलते कोई चीज समान रूप से संभव या असंभव नहीं रह जाती है। और, किसी भी क्षण में पूँजी की विभिन्न किस्मों और उप–किस्मों के वितरण की संरचना सामाजिक जगत की सर्वव्यापी संरचना, यानी उस जगत के ठोस यथार्थ में उत्कीर्ण उन अवरोधों को निरूपित करती है जो उसके व्यवहारों की सफलता को निर्धारित करते हुए उसके कार्य संपादन को स्थायी रूप में नियंत्रित करते हैं।

जब तक आप पूँजी को केवल आर्थिक सिद्धांत द्वारा स्वीकृत रूप के बजाय उसके सारे रूपों में पुनः चिन्हित नहीं करते तब तक आप सामाजिक जगत की संरचना व क्रियाकलापों को नहीं समझ सकते। आर्थिक सिद्धांत ने अपने ऊपर व्यवहारों के संकुचन की परिभाषा को स्थापित होने की छूट दे दी है जो कि

पूँजीवाद का ऐतिहासिक आविष्कार है। इसके चलते विनिमयों के जगत को वस्तुनिष्ठ और मनोगत रूप से मुनाफे को अधिकतम सीमा तक बढ़ाते जाने की ओर केंद्रित यानी वाणिज्यिक विनिमयों तक संकुचित करके उसने बाकी प्रकार के विनिमयों को निहित रूप से गैर–आर्थिक और फलस्वरूप रुचिरहित घोषित कर दिया है। उसने विनिमय के उन रूपों को विशेष रूप से रुचिरहित परिभाषित किया है जो काया बदल सकते हैं और जिनके जरिए पूँजी के सर्वाधिक भौतिक रूप– ऐसे रूप जो संकुचित अर्थ में आर्थिक होते हैं– खुद को साँस्कृतिक पूँजी या सामाजिक पूँजी के अभौतिक रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं और अभौतिक रूप अपने–आपको साँस्कृतिक पूँजी या सामाजिक पूँजी के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। आर्थिक सिद्धांत में रुचि या हित को जिस तरह संकुचित अर्थ में देखा जाता है, वह अपने नकारात्मक समकक्ष यानी रुचिहीन आयाम को पैदा किए बिना अस्तित्व में नहीं आ सकता। व्यवहारों की जिस श्रेणी का मकसद केवल मौद्रिक लाभ को बढ़ाना होता है, उसको इस रूप में तब तक परिभाषित नहीं किया जा सकता जब तक कि उद्देश्यरहित साँस्कृतिक या कलात्मक व्यवहारों की अंतिमता या उनके उत्पादों की रचना नहीं की जाएगी। दोहरी प्रविष्टि लेखांकन प्रणाली से लैस बुर्जुवा पुरुष का जगत कला–की–खातिर–कला और विशुद्ध सिद्धांत की कलात्मक व बौद्धिक और आत्मसंतोषी गतिविधियों के विशुद्ध, दोषरहित जगत की रचना किए बिना नहीं रचा जा सकता। कहने का मतलब यह है कि वाणिज्यिक संबंधों का ऐसा विज्ञान, जो कि उस व्यवस्था की आधारशिला– निजी संपत्ति, मुनाफा, उजरती मजदूरी आदि– को विवाद से परे मानता है, जिसका वह विश्लेषण करना चाहता है, वह आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र का विज्ञान तो नहीं ही है; उसने व्यवहारों के संकुचन का ऐसा सामान्य विज्ञान गढ़ने की संभावना को भी अवरुद्ध किया हुआ है, जिसमें वाणिज्यिक विनिमय को उसके सारे रूपों में देखा जा सके।

2.6 सामाजिक और साँस्कृतिक पूँजी

सामाजिक पूँजी ऐसी वास्तविक या संभावित संपदाओं का सकल योग होता है, जो परस्पर परिचय और मान्यता के कमोबेश संस्थागत संबंधों के एक टिकाऊ नेटवर्क की सदस्यता से जुड़ा होता है– या दूसरे शब्दों में, किसी समूह की सदस्यता से जुड़ी होती है। यह नेटवर्क या समूह अपने प्रत्येक सदस्य को सामूहिक स्वामित्वयुक्त पूँजी का समर्थन, एक ऐसी "विश्वसनीयता" प्रदान करता है जो उनको विभिन्न अर्थों में ऋण का अधिकारी बना देता है। संभव है ये संबंध केवल ऐसे व्यवहारिक रूप में, बौद्धिक या सांकेतिक विनिमयों में ही विद्यमान रहते हों, जो उन्हें बनाए रखने में मदद देते हैं। वे सामाजिक रूप से संस्थाकृत और एक साझा नाम द्वारा संबोधित भी हो सकते हैं यह नाम किसी परिवार, वर्ग, कबीले या स्कूल, पार्टी आदि का हो सकता है और वे असंख्य ऐसे सांस्थानिक कृत्यों द्वारा बंधे हो सकते हैं, जिनको उनके घटकों को बनाने व चलाने के लिए रचा व इस्तेमाल किया जाता है। इस मामले में वे कमोबेश विनिमयों द्वारा स्थापित और पुष्ट किए जाते हैं। अविलयी भौतिक एवं सांकेतिक विनिमयों, जिनकी स्थापना और रख–रखाव निकटता की पुनर्स्वीकृति पर आधारित होती है, पर आधारित होने के चलते उनको आंशिक रूप से भौतिक (भौगोलिक) स्थान या आर्थिक व सामाजिक स्थान में निकटता के वस्तुपरक संबंधों में संकुचित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार, किसी कर्ता के नियंत्राण वाली सामाजिक पूजी का परिमाण इस बात पर निर्भर करता है कि वह प्रभावी तौर पर संपर्कों का कितना बड़ा नेटवर्क जुटा सकता है और उन संपर्कों की अपनी–अपनी पूँजी (आर्थिक, साँस्कृतिक या सांकेतिक) का परिमाण कितना है। इसका मतलब यह है कि हालांकि

सामाजिक पूँजी को कर्ता या यहां तक कि जिनसे वह जुड़ा हुआ है उन सारे कर्ताओं की आर्थिक और सामाजिक पूँजी में भी सीमित नहीं किया जा सकता; परंतु, सामाजिक पूँजी कभी भी इससे पूरी तरह स्वतंत्र नहीं होती क्योंकि परस्पर मान्यता को संस्थाबद्ध करने वाले विनिमय इस बात पर आधारित होते हैं कि न्यूनतम वस्तुनिष्ठ समरूपता को पुनःमान्यता दी जाए चूंकि इससे उस कर्ता के पास मौजूद पूँजी पर बहुगुणक प्रभाव पड़ता है। किसी समूह की सदस्यता से जो लाभ मिलते हैं वे उन लाभों को साकार करने वाली एकजुटता का आधार होते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि उनको सुनियोजित ढंग से या सोच–समझ कर साकार किया जाता है। यहां तक कि सीमित सदस्यता वाले क्लब जैसे समूहों में भी प्रायः ऐसा नहीं होता जबकि उनको सामाजिक पूँजी के संकेंद्रण के लिए जान–बूझकर संगठित किया जाता है ताकि संकेंद्रण में निहित बहुगुणक प्रभाव और सदस्यता के अधिकतम संभव लाभ–भौतिक लाभ, जैसे उपयोगी संबंधों से पैदा होने वाली विभिन्न प्रकार की सेवाएं, और सांकेतिक लाभ, जैसे किसी दुर्लभ, प्रतिष्ठित समूह के साथ जुड़ाव से पैदा होने वाले लाभ–अर्जित किए जा सकें। संपर्कों के नेटवर्क का अस्तित्व स्वाभाविक या सामाजिक तौर पर भी ऐसी चिरस्थायी चीज नहीं होता जिसे शुरुआती गठन की क्रिया के जरिए हमेशा के लिए स्थापित कर दिया गया हो और जिसे परिवार समूह के मामले में कुटुंब की वंश व्यवस्था के रूप में निरूपित किया जाता हो। यह संस्थाकरण की चेष्टाओं का उत्पाद होता है, जिसके संस्थाकरण के अनुष्ठान– जिन्हें गलती से rites of passage हम अनुष्ठान कह दिया जाता है– बुनियादी क्षणों को चिह्नित करते और भौतिक या सांकेतिक लाभ सुनिश्चित करने वाले स्थायी, उपयोगी संबंधों का उत्पादन व पुनरुत्पादन करने के लिए अनिवार्य होते हैं देखें बोर्डियों 1982) । कहने का मतलब यह है कि संबंधों का यह जाल व्यक्तिगत या सामूहिक निवेश रणनीतियों का उत्पादन होता है। ये निवेश–रणनीतियां सचेत या अचेत रूप से ऐसे सामाजिक संबंध स्थापित या पुनरुत्पादित करने के लक्ष्य पर केंद्रित होती हैं, जिनका अल्प या दीर्घ काल में प्रत्यक्ष रूप से इस्तेमाल किया जा सकता है, यानी जिनको प्रासंगिक संबंधों, यथा, मोहल्ले, कार्यस्थल, कुटुंब आधारित संबंधों में रूपांतरित किया जा सकता है जो कि अनिवार्य भी हैं और वैकल्पिक भी, यानी जिनमें स्थायी दायित्व भावनात्मक स्तर पर महसूस किया जाता (अहसान, सम्मान, दोस्ती आदि भावनाएं) या संस्थागत रूप से गारंटीशुदा होता है। विनिमय की प्रक्रिया विनिमयित चीजों को मान्यता के चिन्हों में रूपांतरित कर देती है और परस्पर मान्यता तथा उसमें निहित समूह सदस्यता की मान्यता के जरिए समूह का पुनरुत्पादन करती है। इसी तरह यह समूह की सीमाओं को पुनः पुष्ट करता है, यानी ये तय करती है कि किन सीमाओं के बाहर संघटक विनिमय– व्यापार, सहजीवन या विवाह नहीं हो सकता। इस तरह समूह के प्रत्येक सदस्य को उस समूह की सीमाओं का प्रहरी बना दिया जाता है, क्योंकि प्रवेश की कसौटी की परिभाषा हर नए प्रवेश में दांव पर होती है इसलिए वह किसी प्रकार के दूषित गठजोड़ के जरिए वैध विनिमय की सीमाओं में संशोधन के द्वारा समूह को भी संशोधित या परिवर्तित कर सकता है। यह तर्कसंगत बात है कि ज्यादातर समाजों में विवाह की तैयारी और आयोजन को पूरे समूह का काम माना जाता है, न कि केवल प्रत्यक्ष रूप से संबंधित कर्ताओं का। किसी परिवार, कुटुंब या क्लब में नए सदस्यों के प्रवेश के जरिए समूह की पूरी परिभाषा, यानी उसके जुर्माने, सीमाएं और उसकी पहचान, सब कुछ दांव पर लग जाता है, सब कुछ पुनर्परिभाषा, बदलाव, मिलावट की आशंका में घिर जाता है। आधुनिक समाजों की तरह जब परिवार भी ऐसे विनिमयों की स्थापना पर एकाधिकार खो देते हैं, जो सामाजिक रूप से स्वीकार्य अथवा अस्वीकार्य विवाह जैसे स्थायी संबंधों को जन्म दे सकते हैं, तो भी वे अहस्तक्षेपवाद के तर्क में रहते हुए इन विनिमयों को ऐसी संस्थाओं के जरिए नियंत्रित करते रह सकते हैं, जो वैध विनिमयों को पुरस्कृत करने और अवैध विनिमयों को दंडित व बेदखल करने के लिए ऐसे अवसर रैली, समुद्री पर्यटन,

शिकार, दावत, स्वागत समारोह, आदि, स्थान श्रेष्ठ मोहल्ले, चुनिंदा विद्यालय, क्लब आदि या व्यवहार अच्छे खेल, पार्लर क्रीड़ाएं, साँस्कृतिक उत्सव आदि मुहैया कराते हैं जो आकस्मिक ढंग से लोगों को अस्तित्व के अर्थ में और समूह के स्थायित्व के रूप में अधिकतम संभव ढंग से परस्पर साथ लाते हैं।

2.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने प्रति संस्कृति एवं साँस्कृतिक पूँजी की संकलप्ना, उद्देश्य आदि के विषय में विश्लेषण किया है। सामाजिक और साँस्कृतिक पूँजी दो महत्वपूर्ण आजीविका सम्पत्ति है और वे अन्य सम्पत्तियों के साथ कई अलग–अलग तरीकों से जुड़ती है। साँस्कृतिक पूँजी के सम्बन्ध में पीयरे बोर्डियों के विचारों का उल्लेख भी किया है। साँस्कृतिक पूँजी प्रथाओं की अर्थव्यवस्था (यानि विनिमय की प्रणाली) के भीतर एक सामाजिक सम्बन्ध के रूप में कार्य करती है। इसमें संचित साँस्कृतिक ज्ञान शामिल होता है जो सामाजिक स्थिति और शक्ति प्रदान करता है। साँस्कृतिक पूँजी किसी व्यक्ति को सामाजिक सम्पत्ति है (शिक्षा, बुद्धि, भाषण की शैली और पोषाक की शैली आदि) जो एक स्वीकृत समाज में सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देती है।

2.8. बोध के प्रश्न

2.8.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रति संस्कृति एवं साँस्कृतिक पूँजी की व्याख्या कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. सामाजिक और साँस्कृतिक पूँजी का विस्तृत विवेचना कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2.8.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. साँस्कृतिक पूँजी को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. साँस्कृतिक पूँजी के लाभ को संक्षेप में लिखिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Bankston, C.L. (2022). Rethinking Social Capital. Edward Elgar Publishing.
- Robison, L.J., Schmid, A.A., & Siles, M.E. (2002). Is social capital really capital? Review of Social Economy, 60(1), 1–24
- Bourdieu, P. (1986). Forms of capital. In J.G. Richardson (Ed.), Handbook of theory and research for the sociology of education (pp. 241–258). Greenwood Press
- Fukuyama, F. (1997). Social capital and the modern capitalist economy: Creating a high-trust workplace. Stern Business Magazine, 4(1)
- Farr, J. (2004). Social capital: A conceptual history. Political Theory , 32 (1), 6–33
- Fehr, E., & Gintis, H. (2007). Human motivation and social cooperation: Experimental and analytical foundations. Annual Review of Sociology , 33 , 43–64
- Portes, A. (1998). Social capital: Its origins and applications in modern sociology. Annual Review of Sociology , 24 (1), 1–25
- Woolcock, M. (1998). Social capital and economic development: Toward a theoretical synthesis and policy framework. Theory and Society , 27 (2), 151–208

- Sandefur, R., & Laumann, E. O. (1998). A paradigm for social capital. Rationality and Society , 10 (4), 481–501
- Putnam, R. D. (1995). Bowling alone: America's declining social capital. Journal of Democracy , 6 (1), 65–78.
- Putnam, R. D. (2000). Bowling Alone: The Collapse and Revival of American Community . Simon and Schuster
- Kang, M. J., & Glassman, M. (2010). Moral action as social capital, moral thought as cultural capital. Journal of Moral Education , 39 (1), 21–36
- Wilkes, L., & Quinn, B. (2016). Linking social capital, cultural capital, and heterotopia in a folk festival. Journal of Comparative Research in Anthropology and Sociology , 7 (01), 23–39
- Nahapiet, J., & Ghoshal, S. (1998). Social capital, intellectual capital, and organizational advantage. Academy of Management Review , 23 (2), 242
- Claridge, T. 2020. Social capital at different levels and dimensions: a typology of social capital. Institute for Social Capital, New Zealand
- Bourdieu, P. (1986) The Forms of Capital . In: Richardson, J. ed. Handbook of Theory and Research for the Sociology of Education . Westport, CT: Greenwood, pp. 241-258.
- Bourdieu, P., Nice, R. (1972) Outline of a Theory of Practice . 17th ed. Cambridge: Cambridge University Press.
- Becker, Gary S., A Theoretical and Empirical Analysis with Special Reference to Education, New York: National Bureau of Economic Research, 1964.
- Human Capital, New York: Columbia University Press, 1964b.
- Bourdieu, Pierre, "Les Rites d'Institutions", Actes de la Recherche en Ciènces Sociales, 43 (1982): 58-63.
- Breton, A. "The Economics of Nationalism", Journal of Political Economy 72 (1962): 376-86.
- Grassby, Richard, "English Merchant Capitalism in the Late Seventeenth Century: The Composition of Business Fortunes", Past and Present 46 (1970): 87-107.

इकाई-३ प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य – इमाईल दुर्खीम एवं पारसन्स

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य – इमाईल दुर्खीम

3.3 समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के रूप में प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

3.4 दुर्खीम धर्म एक कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य

3.4.1 दुर्खीम का पवित्र और अपवित्र सिद्वान्त

3.4.2 दुर्खीम का टोटमवाद की अवधारणा

3.5 दुर्खीम के धार्मिक संस्कारों की चार अलग–अलग श्रेणियाँ

3.5.1 यज्ञ संस्कार

3.5.2 अनुकरणीय संस्कार

3.5.3 स्मारक संस्कार

3.5.4 पियाकुलर संस्कार

3.6 प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य पारसन्स

3.7 प्रकार्यवाद का सिद्धांत समाज एवं समाज व्यवस्था

3.8 पार्सन्स का प्रकार्यवाद की अवधारणा

3.9 सारांश

3.10 बोध प्रश्न

3.11 सन्दर्भ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप, जान सकेंगे–

- ❖ समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में प्रकार्यात्मक की भूमिका को जान सकेंगे
- ❖ इमाईल दुर्खीम का प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य को जान सकेंगे
- ❖ दुर्खीम के धर्म पर दिये विचार को आप जान सकेंगे।
- ❖ पारसन्स का प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य को आप जान सकेंगे
- ❖ प्रकार्यवाद का सिद्धांत एवं समाज व्यवस्था को आप समक्ष सकेंगे

3.1 प्रस्तावना

ईमाइल दुर्खीम एक प्रमुख फ्रांसीसी समाजशास्त्री थे दुर्खीम का प्रकार्यवाद का सिद्धांत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह संरचनात्मक प्रकार्यवाद सिद्धांत का आधार है, जो प्रमुख समाजशास्त्रीय सिद्धांतों में से एक है। प्रकार्यवाद बताता है कि समाज के हिस्से एक साथ कैसे काम करते हैं और यह व्यक्तिगत व्यवहार को कैसे प्रभावित करता है। प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य का मानना है कि हर चीज़ एक उद्देश्य या भूमिका से प्रेरित होती है। समाज का प्रत्येक पहलू इसे क्रियाशील बनाए रखने में भूमिका निभाता है, और किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति भी एक उद्देश्य से प्रभावित होती है। प्रकार्यवाद सामजिक मानव–विज्ञान और समाजशास्त्र में एक उपागम का नाम है, जिसके अनुसार समाज अंतर संबंधित हिस्सों का पूरा हिस्सा है, जहाँ प्रत्येक हिस्सा पूरे हिस्से की रख रखाव में योगदान देता है। समाजशास्त्र का लक्ष्य समाज के प्रत्येक हिस्से के योगदान का पता लगाता है और पूरे हिस्से की क्रमिक व्यवस्था को साथ लेकर कार्य करता है। वहीं पर प्रकार्य के कई अर्थ और कई प्रयोग हैं, लेवी, जूनियर, लिखते है संभवतः प्रकार्य के सामान्य संकल्पना के साथ मुख्य समस्या है यह है कि एक ही शब्द का कई भिन्न–भिन्न संदर्भों में प्रयोग होता है।

3.2 प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य – इमाईल दुर्खीम

इमाईल दुर्खाम पूर्णत समाजशास्त्रीय थे जिनका जन्म 15 अप्रैल 1858 को फ्रान्स के एक शहर मांटेपेलियर मे हुआ था। इनको समाजशास्त्र का प्रथम प्रोफेसर भी माना जाता है इन्होंने 1892 मे पी0एच0डी0 की डिग्री प्राप्त किया जो शीर्षक शोध का था। **'समाज में श्रम विभाजन'** दुर्खाम अपने एक मात्र पुत्र के प्रथम

विश्वयुद्ध में मारे जाने के पश्चात दुख सहन नहीं कर पाए और 15 नवंबर 1917 को हृदयगति रुक जाने से देहांत हो गया।

समाजशास्त्र में प्रकार्यवाद के आदर्श लेखक दुर्खाइम समाजशास्त्र विषय को परिभाषित करने के लिए प्रखरता के साथ–साथ दर्शनशास्त्र को भी प्रभावित करते हैं। जो जीव विज्ञान से बिल्कुल अलग है। उनके लिए, समाजशास्त्र सामाजिक तथा तुलनात्मक और वस्तुपरक अध्ययन है, जो सोचने और कार्य करने एवं अनुभव करने का तरीका है, जिसके बाहर मौजूद व्यक्ति चेतना के विचारणीय गुण हैं।

सामाजिक तथ्य व्यक्ति में नहीं पाए जाते, समूह सामूहिक मन में उत्पन्न होते हैं। वे उसी तरह से अध्ययन किए जाते हैं जिस प्रकार से भौतिक वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है। क्योंकि वे व्यक्ति के दायरे के बाहर अस्तित्व में होते हैं, सामाजिक तथ्य वस्तु होते हैं, वस्तुतः व्यक्ति के दायरे के बाहर महसूस किए जाते हैं। फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि वे उसी तरह वास्तविक हैं जिस प्रकार की भौतिकी प्रेषण। इसके बजाय, उनके अध्ययन के लिए किसी को उसी गुड का प्रयोग करना पड़ता है जो प्राकृतिक और जैविक वस्तुओं के अध्ययन में किया जाता है जिसमें प्राकृतिक और जीव–वैज्ञानिक विषय–वस्तु शामिल होती हैं।

दुर्खाइम की पुस्तक **'द डिवीज़न ऑफ लेबर इन सोसाइटी' (1893)** मुख्य रूप से मजदूर निहित समस्याओ से सम्बंधित है। दुर्खीम के द्वारा प्रतिपादित प्रकार्य की परिभाषा ने आश्चर्य जनक रूप से उनके बाद के समाजशास्त्र और सामाजिक मानवविज्ञान दोनों में प्रकार्यवादियों लेखन को प्रभावित किया, उनके अनुसार, प्रकार्य एक योगदान है जो एक घटक पूरे समाज के रखरखाव और भलाई हेतु करता है। इसलिए प्रकार्य एक सकारात्मक योगदान है यह समाज की अच्छाई में अतंनिहित है जिसके लिए यह निरंतरता सातत्य और स्वस्थ रखरखाव सुनिश्चित करता है।

दुर्खीम ने जिस कार्यात्मकता की धारा विकसित की, उसे संरचनात्मक कार्यात्मकता के रूप में जाना जाता है। वह संरचनात्मक कार्यात्मकता के संस्थापकों में से एक हैं। जहाँ कार्यात्मकता में सामाजिक संरचनाओं का अध्ययन जैविक या व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसके कार्यों के संदर्भ में किया जाता है। वहीं संरचनात्मक कार्यात्मकता में सामाजिक एकता को बनाए रखने के लिए सामाजिक संरचनाओं के कार्य अधिक केंद्रित होते हैं। दुर्खीम के लिए समाज अपने आप में एक इकाई है (सुई जेनरिस), जिसमें कई घटक सम्मिलित होते हैं। दुर्खीम ने कई प्रकार्यवादी विचारों को खारिज कर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि समाज की अपनी पहचान उसके घटक भागों से अलग है। उनका ध्यान सामाजिक तथ्यों, सामाजिक

संरचनाओं, सांस्कृतिक मानदंडों और मूल्यों के कार्यों का अध्ययन करने पर था, जिनमें से सभी ने तर्क दिया कि वे व्यक्ति के लिए बाहरी हैं ।

दुर्खीम सामाजिक एकजुटता या सामंजस्य के बारे में अधिक चिंतित थे और एक सामाजिक इकाई अपने सदस्यों को एक साथ कैसे रखती है। दुर्खीम ने सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के महत्व पर जोर दिया क्योंकि वे सामाजिक संरचनाओं की एकजुटता बनाए रखने के लिए कार्य करते हैं। उन्होंने इस प्रश्न को संबोधित करने के लिए जैविक एकजुटता और सामूहिक विवेक जैसी अवधारणाओं का उपयोग किया। सामाजिक तथ्यों का अध्ययन करके समाज का अध्ययन किया जाना चाहिए,जो समाज में साझा जागरूकता का हिस्सा हैं। उन्होंने समाजों की स्पष्ट स्थिरता और आंतरिक सामंजस्य की व्याख्या करने की कोशिश की, जो समय के साथ इसके निरंतर अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं। समाजों को सुसंगत, बाध्य और मौलिक रूप से संबंधपरक निर्माणों के रूप में देखा जाता है, जो जीवों की तरह कार्य करते हैं, उनके विभिन्न भागों को बनाए रखने और उन्हें पुनः पेश करने के लिए मिलकर काम करते हैं। समाज के विभिन्न हिस्सों को समग्र सामाजिक संतुलन के रखरखाव की दिशा में एक अचेतन, अर्ध–स्वचालित फैशन में काम करने के लिए माना जाता है। इसलिए सभी सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओं को इस राज्य को प्राप्त करने के लिए एक साथ काम करने के अर्थ में कार्यात्मक होने के रूप में देखा जाता है और प्रभावी रूप से उनका अपना जीवन माना जाता है। फिर उनका मुख्य रूप से इस कार्य के संदर्भ में विश्लेषण किया जाता है जो वे खेलते हैं। व्यक्ति अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि उनकी स्थिति, सामाजिक संबंधों के पैटर्न में उनकी स्थिति, और उनकी भूमिका, व्यवहार के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं उनकी स्थिति से जुड़ा हुआ है। सामाजिक संरचना तब संबंधित भूमिकाओं से जुड़ी स्थितियों का नेटवर्क है।

3.3 समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के रूप में प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों में प्रकार्यात्मक सबसे पुराना और अभी भी प्रमुख सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य है। प्रकार्यवादी दृष्टिकोण में सामाजिक घटना का विश्लेषण सामाजिक एकता को बनाए रखने की दिशा में उसके कार्यों के संदर्भ में किया जाता है। एक सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के रूप में प्रकार्यात्मक जैविक सिद्धांतों और मानव शरीर के कामकाज से बहुत अधिक सींची गई है। उद्देश्य सामाजिक दुनिया के लिए वैज्ञानिक पद्धति का अनुप्रयोग और व्यक्तिगत जीव और समाज के बीच एक सादृश्य का उपयोग। मानव शरीर के कामकाज का विश्लेषण एक दूसरे के साथ–साथ जीव के संबंध में विभिन्न मानव अंगों के कामकाज के संदर्भ में किया जाता है। प्रकार्यात्मक एक समान दृष्टिकोण को अपनाती है। यह माना जाता है कि समाज विभिन्न भागों से बना है और समाज के विभिन्न हिस्सों को परस्पर संबंधित देखा जाता है

और एक साथ लिया जाता है, वे एक पूर्ण प्रणाली बनाते हैं। जीवविज्ञानियों की तरह, कार्यात्मकवादी समाज के किसी भी हिस्से का विश्लेषण करते हैं, जैसे कि परिवार या धर्म आदि, पूरे व्यवस्था के रखरखाव में इसके योगदान के संदर्भ में। इस प्रकार, कार्यात्मकवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार समाज को एक प्रणाली के रूप में माना जाता है, जो परस्पर संबंधित या परस्पर जुड़े भागों से बना होता है और प्रत्येक भाग में पूरे व्यवस्था के रखरखाव के लिए पूरा करने के लिए एक कार्य होता है।

3.4. दुर्खीम के धर्म एक कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य

धर्म एक सामाजिक संस्था है। कार्यात्मकवादी धर्म का विश्लेषण उसके कार्यों या योगदानों के संदर्भ में करता है जो धर्म समाज की कार्यात्मक पूर्व–आवश्यकताओं या बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए करता है जैसे कि सामाजिक एकजुटता, मूल्य सर्वसम्मति, सद्भाव और समाज के विभिन्न हिस्सों के बीच एकीकरण आदि। उनके अनुसार धर्म कार्यात्मक है और सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व को सुनिश्चित करता है। कार्यात्मकवादियों का तर्क है कि धर्म समाज में एक एकीकृत बल है, यह सुनिश्चित करने का एक साधन है कि लोग महसूस करते हैं कि वे समाज से संबंधित हैं। यह लोगों को समाज में दूसरों के साथ कुछ सामान्य होने की भावना देता है। यह लोगों के लिए सामाजिक प्रतिबद्धता और सामाजिक एकजुटता से संबंधित सामूहिक विश्वासों को व्यक्त करने का एक साधन है। यह एक रास्ता प्रदान करता है। जो लोगों के लिए सामान्य मूल्यों, विश्वासों और आदर्शों की पुष्टि करने के लिए। यह सामूहिक चेतना है। यह केंद्रीय मूल्य प्रणाली के रूप में भी कार्य करता है। इस प्रकार, कार्यात्मकवादियों के लिए इन कार्यों को पूरा करने वाली किसी भी सामाजिक घटना / संस्था को धर्म कहा जा सकता है।

3.4.1 दुर्खीम का पवित्र और अपवित्र सिद्धान्त

दुर्खीम ने कहा कि धर्म मुख्य रूप से तीन प्रकार की गतिविधियों से संबंधित है पवित्र और अपवित्र के बीच अलगाव बनाए रखना, नियमों की एक प्रणाली स्थापित करना जो कुछ तरीकों को मना करता है। उन्होंने तर्क दिया कि किसी भी समाज में धार्मिक घटनाएं तब उभरती हैं जब अपवित्र के क्षेत्र के बीच अलगाव होता है। रोजमर्रा की उपयोगितावादी गतिविधियों का क्षेत्र और पवित्र का क्षेत्र वह क्षेत्र है जो अलग है। पारलौकिक, असाधारण है। एक वस्तु आंतरिक रूप से न तो पवित्र है और न ही अपवित्र। यह एक या दूसरे पर निर्भर करता है कि क्या पुरुष वस्तु के उपयोगितावादी मूल्य या कुछ आंतरिक विशेषताओं पर विचार करना चाहते हैं जिनका इसके वाद्य मूल्य से कोई लेना–देना नहीं है। पवित्र और अपवित्र के बीच यह विभाजन सभी धर्मों के लिए आम है और दुर्खीम के अनुसार, यह विभाजन धार्मिक जीवन का सबसे विशिष्ट तत्व है क्योंकि यह कई मामलों में धार्मिक जीवन का आधार बनाता है। मानव विचार के इतिहास

में, दुर्खीम ने जोर दिया कि, चीजों की दो श्रेणियों का कोई अन्य उदाहरण मौजूद नहीं है जो इतनी गहराई से विभेदित या एक दूसरे के विपरीत मौलिक रूप से भिन्न है ।

3.4.2 दुर्खीम का टोटमवाद

जीववाद और टोटमवाद के बजाय, दुर्खीम ने ऑस्ट्रेलियाई जनजातियों के बीच धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या करने के लिए प्रमुख अवधारणा के रूप में टोटमवाद दिया। उनका मानना था कि ऑस्ट्रेलियाई टोटम धर्म के सबसे प्राथमिक रूप का उदाहरण देता है और विश्वासों की अंतर्निहित प्रणाली धार्मिक जीवन की प्रकृति का सबसे अच्छा उदाहरण है। वह टोटेमिज्म की उत्पत्ति के अंतर्निहित कारकों को अलग करने के लिए टोटेमिज्म मान्यताओं और टोटेमिज्म की संरचना के लिए एक समाजशास्त्रीय जांच करता है और इस प्रकार मानवता में धार्मिक भावना के उदय के कारणों की खोज करती है टोटेमिज्म संगठन कबीले प्रणाली के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, जो ऑस्ट्रेलियाई समाजों की विशेषता है। कुलदेवता कबीले की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि कबीले समूह की पहचान को दर्शाने वाला नाम एक भौतिक वस्तु है एक कुलदेवता जिसके बारे में माना जाता है कि इसमें बहुत विशेष गुण हैं। प्रत्येक कबीले के सदस्य खुद को एक विशेष प्रकार के रिश्तेदारी से एक साथ बंधे हुए मानते हैं, जो रक्त पर आधारित नहीं है, बल्कि केवल इस तथ्य पर है कि वे एक ही कुलदेवता साझा करते हैं। ऐसा माना जाता है कि इसमें एक रहस्यमय या पवित्र बल या सिद्धांत है जो वर्जनाओं के उल्लंघन के लिए प्रतिबन्ध प्रदान करता है और समूह में नैतिक जिम्मेदारी को विकसित करता है। एक ही जनजाति के भीतर दो कुलों में एक ही कुलदेवता नहीं हो सकता है। एक कुलदेवता एक जानवर, एक सब्जी या एक निर्जीव वस्तु हो सकती है। यह पवित्र और अपवित्र के बीच द्वंद्ववाद की धुरी है। कुलदेवता का पवित्र चरित्र अनुष्ठान पालन में प्रकट होता है, जो इसे सामान्य वस्तुओं से अलग करता है जिनका उपयोग उपयोगितावादी सिरों के लिए किया जा सकता है। कुलदेवता उस वस्तु का नाम है जिससे विश्वास और संस्कार प्रवाहित होते हैं, और इस अर्थ में यह वह भी है जिसे दुर्खीम ने प्रतीक कहा है जो समूह का प्रतिनिधित्व करता है। कुलदेवता प्रतीक समूह के नाम को नामित करता है और समूह के संगठन के रूप में समूह के लिए खड़ा होता है। टोटम प्रतीक चुरिंगा का रूप लेता है, जो दुर्खीम के अनुसार, टोटम का भौतिक अवतार है और आमतौर पर लकड़ी का एक टुकड़ा या एक पॉलिश पत्थर होता है, जिस पर विशेष समूह के कुलदेवता का प्रतिनिधित्व करने वाला एक डिज़ाइन होता है। ऐसा माना जाता है कि असाधारण पवित्रता है और विभिन्न अनुष्ठान नुस्खे और निषेध उन्हें घेरते हैं।

3.5 दुर्खीम के धार्मिक संस्कारों की चार अलग–अलग श्रेणियाँ

3.5.1 यज्ञ संस्कार

यज्ञ संस्कार, जो दीक्षा और बलिदान से संबंधित हैं। ये संस्कारों के वर्ग हैं, जो समूह की वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों के दायित्वों को निर्दिष्ट और विनियमित करते हैं, जो या तो कुलदेवता के रूप में कबीले की सेवा करते हैं या जीवन के लिए मौलिक के रूप में नामित होते हैं। इनमें जीवित रहने से संबंधित वस्तुएं जैसे आवश्यक खाद्य पदार्थ और पुनर्जन्म से संबंधित शक्तियां शामिल हैं। इन संस्कारों में समारोह शामिल होते हैं जिसमें प्राकृतिक दुनिया की उत्पादक शक्तियों का जश्न मनाया जाता है। यज्ञ से संबंधित संस्कारों की व्यवस्था दो महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाती है। वे उन व्यक्तियों को पवित्र करते हैं जो उनमें भाग लेते हैं और वे समूह की सामूहिक प्रथाओं और सामाजिक भावनाओं को फिर से लागू और पुनर्जीवित करते हैं।

3.5.2 अनुकरणीय संस्कार

अनुकरणीय संस्कार, के लिए कुलदेवता जानवर की नकल की अनुमति प्रजनन के उद्देश्य से यह अनुष्ठान जानवरों की विभिन्न गतिविधियों और आदतों की नकल करते हैं जिनकी प्रजनन शक्तियां वांछित हैं। इन संस्कारों के कार्यों में ऐसे समारोह शामिल होते हैं जिनमें व्यक्ति जानवरों या कीड़ों के आलंकारिक रूपों और कार्यों की नकल करके खुद को एक अनुष्ठान तरीके से सजाते हैं। नकल के संस्कारों में जनजाति के सदस्य मानते हैं कि नकल की जा रही वस्तुओं की स्थिति और गुणों को समूह के सदस्यों को स्थानांतरित कर दिया जाता है और इसके साथ ही कुछ नया बनाया जाता है। जानवर के होने की नकल करके वे यह विश्वास पैदा करते हैं कि जानवर को पुन उत्पन्न किया जाएगा।

3.5.3 स्मारक संस्कार

स्मारक संस्कार इस बात से संबंधित हैं कि समूह समूह के लिए खुद का प्रतिनिधित्व कैसे करता है। इन संस्कारों में केवल अतीत को याद करने और प्रतिनिधित्व के माध्यम से इसे प्रस्तुत करने में शामिल है। इन संस्कारों का कार्य पूर्वजों के पौराणिक इतिहास को व्यवहार में लाकर समूह का प्रतिनिधित्व करना है, जिस क्षण से वे उभरते हैं और वे एक समारोह में अपने कार्यों को ईमानदारी से याद करते हैं। संस्कार विश्वासों की जीवन शक्ति को बनाए रखने और उन्हें भुलाए जाने से बचाने के लिए काम करती हैं। यह उन भावनाओं को नवीनीकृत करने का तरीका है जो समाज में स्वयं और उसकी एकता के बारे में है और समूह की सामाजिक प्रकृति को मजबूत करता है।

3.5.4 पियाकुलर संस्कार

पियाकुलर संस्कार, जो हानि या पीड़ा का प्रतिनिधित्व करने के लिए किए गए संस्कार हैं। संस्कारों का यह वर्ग अनुष्ठान और धार्मिक कार्य करने के लिए आरक्षित है हर उस चीज का महत्व जिसमें दुर्भाग्य, हानि

और मृत्यु शामिल है। जबकि अन्य प्रणालियां सभी समूह जीवन में सकारात्मक घटनाओं का जश्न मनाती हैं, समुद्री संस्कार धार्मिक महत्व और दुर्भाग्य और संकट की गंभीरता की पुष्टि करते हैं। समारोहों के अवसर जहां मृतकों का शोक मनाया जाता है या जहां एक खराब फसल समूह के अस्तित्व के लिए खतरा होती है, उसमें पियाकुलर अनुष्ठान शामिल होते हैं। ये संस्कार समूह को दुर्भाग्य से पहले एकता की पूर्व स्थिति में नवीनीकृत करने के लिए कार्य करते हैं और इसमें रोना, विलाप, चुंबन जैसी सभी प्रकार की सामूहिक गतिविधियां शामिल हो सकती हैं।

3.6 प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य पारसन्स

पारसन्स का जन्म सन् 1902 में संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलोरेडो में हुआ। 1924 में वे अमहट कॉलेज से अर्थशास्त्र विषय में स्नातक हुए, बाद में वे लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स में डॉक्टर की पढ़ाई करने के लिए चले गए। लंदन में उस समय वे अर्थशास्त्र के शिक्षकों के अतिरिक्त समाजशास्त्र के मोरिस गिन्सबर्ग (Mores Ginsberg 1889–1970) से मिले। उनकी मुलाकात मैलीनोंस्की 1884 से हुई। मैलीनोंस्की 1914 से 1918 तक दक्षिण–पश्चिम प्रशांत महासागर के द्वीपों में आदिवासियों के बीच रहकर उनके जीवन के अनेक पक्षों का अध्ययन कर चुके थे। सभवतः इन प्रभावों से पारसन्स की रुचि सामाजिक जीवन एवं सामाजिक संबंधों में हुई। 1925 के आसपास पारसन्स इंग्लैंड से जर्मनी के हीडनबर्ग विश्वविद्यालय में चले गए। इस विश्वविद्यालय में पारसन्स ने मैक्स वेबर के विचारों को जाना। संभवतः फ्राँस में प्रवास के समय पारसन्स ने विल्फ्रेड पैरेटो के संबंध में आये। पैरेटो से संतुलन (equilibrium) की धारणा अपना ली। पारसन्स ने पैरेटो के संबंध में वृहद् अध्ययन 1931 के बाद ही किया जब एल.जे. हेन्डरसन ने संयुक्त राज्य अमेरिका में विल्फ्रेड पैरेटो के संबंध में एक सेमिनार का आयोजन करवाया। 1927 में पारसन्स हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के इंस्ट्रक्टर नियुक्त हुए। पारसन्स ने जार्ज रीटजर के अनुसार अनेक बार अपने विभाग बदले। 1930 में जब पी.ए. सोरोकिन की अध्यक्षता में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग बना तब पारसन्स समाजशास्त्र विभाग में चले आए। 1979 में अपनी अप्रत्याशित मृत्यु तक वे किसी न किसी रूप में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में ही बने रहे। 1944 में पारसन्स हार्वर्ड में समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष हो गए। 1946 में उन्होंने इस विभाग का नामकरण सामाजिक संबंध विभाग कर दिया। 1949 में पारसन्स अमेरिकी समाजशास्त्र परिषद् के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसके अगले दस वर्षों तक पारसन्स अमेरिकी समाजशास्त्र में सबसे प्रभावशाली समाजशास्त्री के रूप में छाए रहे।

3.7 प्रकार्यवाद का सिद्धांतः समाज एवं समाज व्यवस्था

पारसन्स 1937 से ही समाज व्यवस्था की बात कर रहे थे। 1951 तक पारसन्स ने माना कि सामाजिक क्रिया से समाज व्यवस्था बनती है। 1951 में पारसन्स ने अपनी बौद्धिक स्थिति को बदल कर सामाजिक क्रिया के स्थान पर समाज व्यवस्था को प्राथमिकता प्रदान की। इसे अनेक विद्वान पारसन्स की बौद्धिक कलाबाजी कहते हैं। प्रकार्यवाद ने सामान्यतः उद्विकास की दृष्टि अपनाई है। पारसन्स ने परोक्ष रूप से 1951 में ही इसे मान लिया परंतु 1966 में इसे स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया गया। पारसन्स ने सामाजिक यथार्थ एवं समाजशास्त्रीय यथार्थ के आकलन के लिए व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के स्थान पर समूहवादी दृष्टिकोण अपना ली और कहा कि समाज व्यवस्था व्यक्तियों का ऐसा संग्रह है जो अलग–अलग प्रस्थितियों पर स्थित होकर भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। यह व्यवस्था में प्रचलित नियमों को मानते हैं। उनसे नियंत्रित होते हैं। समाज व्यवस्था में सभी लोग कुछ मूल स्थापनाओं को मानते हैं। इसे पारसन्स ने मूल्य सहमति (value consensus) कहा है। पारसन्स ने इस पर बड़ा बल दिया जिससे उनकी आलोचना हुई। समाज व्यवस्था में लक्ष्य होते हैं, इसके भी कारण समाज में एकता होती है।

समाज व्यवस्था की धारणा के दो उपयोग हैं एक माडल (Model) के रूप में यह समूह स्थिति के विश्लेषण का उपकरण है और दूसरे उपयोग में व्यापक समाज के विवरण की धारणा है। माडल के रूप में प्रयोग करने पर किसी भी समूह में पहले सदस्यों की संख्या का वर्णन और विवरण दिया जाता है। इसके बाद प्रस्थिति एवं भूमिका का आकलन होता है। तब नियमों की चर्चा होती है। इसके बाद मूल्यों की चर्चा की जाती है और तब लक्ष्य का आकलन करते हैं। पारसन्स ने साइबरनेटिक मॉडल की भी चर्चा की। समाजशास्त्र में अमेरिका में भी व्यवस्था शब्द को एक मॉडल के रूप में प्रयोग किया गया और जब इंजीनियरिंग के विद्यार्थी समाजविज्ञान एवं समाजशास्त्र पढ़ते हैं तब इस मॉडल का प्रयोग करते हैं।

व्यापक समाज का बोध कराने वाली धारणा के रूप में समाज व्यवस्था व्यक्तियों का संग्रह, प्रस्थिति भूमिका संकलन, नियमों, मूल्यों और लक्ष्यों की व्यवस्था तो होती है परंतु इससे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें समाज के परिभाषागत लक्षण होने चाहिए। वास्तविक समाज में मूल्य सहमति आवश्यक है। पारसन्स संस्कृतिवादी थे। संस्कृति समाज का चरित्र तय करती है। परिभाषागत लक्षणों में पारसन्स ने विभेदीकरण, संगठन एवं समन्वय की चर्चा सबसे पहले की है। इसका अर्थ है कि अनेक प्रकार के समूह और संगठन होते हैं जिनसे एक समाज में तालमेल होता है।

दूसरा लक्षण संतुलन का है इसका अर्थ है कि समाज में शक्ति, संपत्ति, प्रतिष्ठा का असमान वितरण होगा। इसका लोगों के द्वारा मान लिया जाना। प्रकार्यवाद असमानता को अनिवार्य मानता है, जिसकी वह व्याख्या

करते है एवं जिसे उचित ठहराते है। पारसन्स ने इसकी खूब चर्चा की। उन्होंने यह धारणा विल्फ्रेडो पैरेटो से अपनाई। पैरेटो ने कहा संतुलन समाज का सर्वमहत्त्वपूर्ण लक्षण है ।

तीसरा लक्षण स्वयं संपूर्णता (self sufficiency) का है। प्रत्येक समाज अपने आप में संपूर्ण है। वह अपने को ही समस्त संसार समझता है। आलोचकों ने कहा पारसन्स यह दावा करते हैं कि वे संपूर्ण मानव के लिए सिद्धांत दे रहे हैं परंतु उनके दिमाग में बराबर ही केवल और केवल अमेरिकी समाज होता है। इस स्वयं संपूर्णता के लक्षण का अर्थ यह भी है कि एक समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करना चाहता है। अंततः सीमा निर्धारण (boundary maintenance) का लक्षण है। इसका अर्थ है बाहर का भाग और अंदर के समर्थन की आशा से बाहर से घृणा एवं अंदरवालों से यानी अपने समाज के सदस्यों से अपनत्व का भाव। औद्योगिक जटिल समाजों में यह भाव कुछ छुपा होता है। आदिवासी समाजों में अधिक होता है। जी. समनर (G- Sumner) ने इसे ही एथनोसेंट्रिज्म कहा है।

3.8 पार्सन्स का प्रकार्यवाद की अवधारणा

पार्सन्स के अनुसार सामाजिक प्रणाली की स्थिरता केवल समाज द्वारा अपने सदस्यों पर लागू किए गए नियम–मर्यादाओं तथा सरकार द्वारा अपने नागरिकों पर लागू किए गए सामाजिक नियंत्रण के अन्य उपायों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि समाज के नागरिकों द्वारा समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक मूल्य, आदर्श आचरण और सामाजिक अस्तित्व की संहिताओं को लागू करके कायम की जाती है। बच्चा विभिन्न सामाजिक विचारों तथा अवधारणाओं के विरुद्ध एवं विपरीत, दोनों तरह के मूल्यों तथा प्रतिमाओं के संबंध में अपने परिवार तथा पड़ोस के माहौल से ही सीखता है। बड़ा होने पर वह स्कूल, कॉलेज और काम के स्थान पर अन्य सामाजिक मूल्य आधारित आधार–पद्धतियों को सीखता और अपनाता है। पार्सन्स के मतानुसार अनुकूलन, लक्ष्यप्राप्ति, उन्मुखीकरण, एकीकरण तथा अनुरूपण (विलंबता) जैसी ये प्रतिक्रियाएं, किसी भी सामाजिक प्रणाली के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। सामाजिक प्रणाली का अस्तित्व बनाए रखने में सहायक एवं उपयोगी योगदान को पार्सन्स ने विशिष्टात्मक माना है। इस दृष्टिकोण को व्यक्त करता है कि सभी सामाजिक योजनाओं की अभिरुचि तत्वों (अंग) के रूप में ऐसी प्रतियां और आधार को विकसित एवं संयोजित करने की है जो उसे बनाए रखने में सहायक होती है। सामाजिक प्रणालियाँ बुनियादी तौर पर इन इकाइयों को अपने अंगों के रूप में विकसित करती हैं और ये इकाइयाँ अनुकूलन (अनुकूलन, लक्ष्य–प्राप्ति, एकीकरण तथा निर्भरता के अनुसार) और सुसंगत होती हैं जैसे कि सरकार, अर्थव्यवस्था, विद्यालय, न्यायालय आदि के रूप में। मानव शरीर की महत्वपूर्ण संरचना का उद्देश्य शरीर का जीवित रहना है और यदि किसी बाहरी तत्व से शरीर को खतरा होता है, तो उसकी आंतरिक प्रणाली तुरंत शरीर के

बचाव में सक्रिय हो जाती है और जब तक वह खतरा नहीं होता तब तक यह सक्रियता जारी रहती है। इस प्रकार की परिवर्तनकारी शरीर में आत्म–नियामक भूमिका स्व–नियामक भूमिका उत्पन्न होती हैं।

सामाजिकता का अर्थ है कि सामाजिक प्रणालियाँ मानव शरीर की जैविक प्रणाली के समान हैं। इन शिखरों में सामाजिक समस्याएं तथा संस्थाएं वही काम करती हैं तथा सामाजिक शिखरों को जीवित रखने के उद्देश्य से उसी प्रकार कार्य करती हैं, जिस प्रकार मानव, शरीर में विशिष्टात्मक समस्याएं कार्य करती हैं। सामाजिक प्रणाली और मानव शरीर दोनों में आत्म–नियमित क्रियाविधि होती है, जिससे उनमें स्थिरता बनी रहती है और बाहरी खतरे से उनका बचाव होता है। इस तरह की संतुलन क्षमता को होमोस्टेसिस कहा जाता है। यद्यपि एक अंतर यह है कि मानव शरीर मनुष्य की सभी प्रजातियों में एक समान होता है, जबकि सामाजिक व्यवस्थाओं के इतिहास की उपज होती हैं। पारसंस का मानना है कि सामाजिक स्वरूप और शैलियों में बहुत भिन्नताएं हैं। मानव शिशु की सुघट्यता (प्लास्टिसिटी) में यह तथ्य प्रकट होता है, विशिष्ट विकास अन्य जीवन के समान आचरण की एक जैसी सतह के साथ होता है। विभिन्न भाषाओं को सीखने के साथ जिन समाज अथवा जातियों में उनका जन्म हुआ है, उनकी तरह–तरह के सांस्कृतिक मूल्य एवं आचार–विचारों के अनुकूल वे ढुलकते हैं। उनमें अनेक प्रेरणाएँ, सांस्कृतिक शैलियाँ आदि को प्रोत्साहन की क्षमता होती है।

पार्सन्स ने संबंधित सामाजिक प्रणालियों की प्रकार्यात्मक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली में स्थिरता तथा मूल्य सहमति के तत्व के प्रवेश से इनकार नहीं किया। परंतु उसने सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं की भी कल्पना की थी। यह सामाजिक प्रणाली के विशिष्ट स्वरूप तया प्रेरक प्रवृत्तियों के स्वरूप का परिणाम होता है, जो कि समाज में सदस्यों की कार्य–व्यवस्थाओं को संगठित करते हैं। पहला स्वरूप सामाजिक प्रणालियों को पारिस्थितिकीय संसाधनों और भौतिक एवं पर्यावरण परिस्थितियों जैसा बाह्य सीमवर्ती स्थितियों तथा सांस्कृतिक संपर्क एवं विचारों और हितों के प्रसार जैसे ऐतिहासिक पहलुओं एवं इन ऐतिहासिक पहलुओं के कारण उत्पन्न सामाजिक दबावों के साथ जोड़ता है।

दूसरा स्वरूप कार्य–प्रणालियों में अभिप्रेरक तत्वों से जोड़ता है, जो अपने स्वरूप में अनिवार्यतः निर्देशात्मक (directional) है। उद्देश्यों तथा मूल्यों के उन्मुखीकरण की दिशा सामाजिक प्रणाली में सामंजस्य और तनाव, दोनों को जन्म देती है। सामजस्य से स्थिरता आती है और तनाव से परिवर्तन होता है। पार्सन्स ने दो स्तरों पर सामाजिक परिर्वतन की कल्पना की है। पहला सामाजिक प्रणाली के भीतर की प्रक्रियाओं से उभरने वाला परिवर्तन और दूसरा सामाजिक प्रणाली में आमूल परिवर्तन की प्रक्रियाएं।

पार्सन्स के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन के दोनों पहलुओं पर ध्यान देने के लिए सामाजिक विज्ञानों में अभी तक कोई निश्चित सिद्धांत विकसित नहीं हो पाया है, किंतु समाजशास्त्र अपने विश्लेषण को दो पहलुओं तक सीमित रखकर सामाजिक परिवर्तन को समझने की समस्या हल कर सकता है। पहला यह कि परिवर्तन का अध्ययन अवधारणात्मक श्रेणियों अथवा प्रतिरूपों की सहायता से किया जाए। अवधारणात्मक श्रेणियां जिन्हें पार्सन्स ने सामाजिक परिवर्तन के विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण माना है, वे हैं अभिप्रेरणात्मक और मूल्यपरक उन्मुखता तथा सामाजिक प्रणाली की प्रकार्यात्मक पूर्व शिक्षाएं पार्सन्स के अनुसार, दूसरा पहलू यह है कि सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन सामान्य स्तर पर नहीं किया जाना चाहिए, जो सभी समाजों पर समान रूप से लागू हो, बल्कि विशिष्ट ऐतिहासिक स्तर पर किया जाना चाहिए। इसलिए पार्सन्स का यह मत है कि समाजशास्त्रियों के लिए समग्र सामाजिक प्रणाली के परिवर्तन की प्रक्रियाओं की तुलना मे सामाजिक प्रणाली के भीतर के परिवर्तन का अध्ययन करना सरल है।

3.9 सारांश

दुर्खीम ने धर्म को समझने के प्रयास में ऑस्ट्रेलिया की आदिवासी जनजातियों का अध्ययन किया और यह समाज को धारण करने के लिए कैसे कार्य करता है। उन्होंने स्थापित किया कि सर्वोच्च भगवान की पूजा करके लोग वास्तव में समाज की पूजा कर रहे हैं। उनके लिए धर्म का कार्य लोगों को अपनी इच्छाओं से पहले समाज के हितों को रखने के लिए तैयार करना था। जनजाति के सभी सदस्य आवधिक कुलदेवता अनुष्ठान करने के लिए एक साथ इकट्ठा होते हैं; यह अनुष्ठान हैं जो सामाजिक व्यवस्था के लिए नियम निर्धारित करते हैं। टोटम जानवर को मारना या नुकसान पहुंचाना मना है और इसलिए किसी आदिवासियों को मारना या नुकसान पहुंचाना मना है। आधुनिक ईसाई धर्म में, वह नैतिक अज्ञानताओं को देखता है जैसे कि द गोल्डन रूल मुख्य रूप से सामाजिक नियम हैं। ये नियम एक दूसरे के प्रति मानव के व्यवहार को विनियमित करते हैं और सामाजिक एकता की भावना को बनाए रखने का काम करते हैं। लोग स्वर्ग या नरक के डर से इन नियमों का पालन नहीं करते हैं बल्कि उनकी इच्छा को स्वीकार करने के लिए करते हैं समाज। यदि धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं तो वे अपनेपन की भावना महसूस करने के लिए, जबकि जो लोग नियमों को तोड़ते हैं और अनुष्ठानों से बचते हैं वे सामाजिक अलगाव से पीड़ित होते हैं। दुर्खीम के लिए ईश्वर समाज का प्रतीक मात्र है।

इस इकाई में आपने टालकट पार्सन्स की प्रकार्यवाद की अवधारणा के बारे में पढ़ा। प्रकार्यवाद तथा सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंध का भी कुछ विस्तार से विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् आपने पार्सन्स द्वारा बताए गए सामाजिक परिवर्तनों के दो प्रकारों की जानकारी प्राप्त की। पहला प्रकार है

सामाजिक प्रणालियों के भीतर परिवर्तन और दूसरा है सामाजिक प्रणालियों में आमूल चूल परिवर्तन। दूसरी तरह के परिवर्तन को पार्सन्स ने विकासात्मक तत्वों की अपनी अवधारणा के माध्यम से स्पष्ट किया है। उन्होंने समाज के विकास को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। पहली श्रेणी है आदिम अथवा प्राचीन समाज, दूसरी है मध्यर्ती समाज और तीसरी श्रेणी है आधुनिक समाज।

3.10 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरी प्रश्न

1. इमाईल दुर्खीम का प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य का वर्णन कीजिए।
2. दुर्खीम के धर्म सम्बन्धी कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य की व्याख्या कीजिए।
3. पारसन्स का प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. पारसन्स के सिद्धांत, प्रकार्यवाद एवं समाज व्यवस्था की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. दुर्खीम ने धार्मिक संस्कारों की चार अलग–अलग श्रेणियों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इमाईल दुर्खीम का जन्म कहाँ हुआ था।

   (1) जर्मन (2) फ्रांस (3) इंग्लैंड (4) भारत

2. इमाईल दुर्खीम का जन्म कब हुआ था।

   (1) 15 अप्रैल 1855 (2) 15 अप्रैल 1856 (3) 15 अप्रैल 1857 (4) 15 अप्रैल 1858

3. द डिवीजन ऑफलेवर इन सोसाइटी 1893 में किसकी पुस्तक है।

   (1) पारसन्स (2) दुर्खीम (3) मैक्सवेवर (4) कार्ल मार्क्स

4. पवित्र व अपवित्र की अवधारणा किसकी है।

   (1) कार्ल मार्क्स (2) पारसन्स (3) दुर्खीम (4) मैक्सवेवर

5. पारसन्स का जन्म कब हुआ।

   (1) 1900 (2) 1901 (3) 1902 (4) 1903

लघु उत्तरी प्रश्न के उत्तरः–

(1) 2 (2) 4 (3) 2 (4) 3 (5) 3

3.11 सन्दर्भ सूची

- प्रो0 मुजतवा हुसैन 'समाजशास्त्रीय विचार' प्रकाशक ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड आसफ अली रोड, नई दिल्ली 2010
- फेंटन, स्टीव 1984। दुर्खीम और आधुनिक समाजशास्त्र। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस कैम्ब्रिज।
- गॉडलव, टेरी ई, जूनियर 1986 दुर्खीम के धार्मिक जीवन के प्राथमिक रूपों में ज्ञानमीमांसा। द जर्नल फॉर द हिस्ट्री ऑफ फिलॉसफी जुलाई में।
- कोसर लुईस ए. 1977 समाजशास्त्रीय विचार के परास्नातक ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में विचार , हारकोर्ट ब्रेस जोवानोविच, इंक फोर्ट वर्थ।
- मॉरिसन केनेथ 1998। मार्क्स, दुर्खीम और वेबर आधुनिक के गठन सामाजिक सिद्धांत। ऋषि प्रकाशन लंदन।
- गिडेंस एंटनी 1992। पूंजीवाद और आधुनिक सामाजिक सिद्धांत मार्क्स, दुर्खीम और मैक्स वेबर के लेखन का विश्लेषण। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
- केनेथ, टकर जूनियर 2001। शास्त्रीय सामाजिक सिद्धांत एक समकालीन दृष्टिकोण। ब्लैकवेल पब्लिशर्स
- टर्नर, जोनाथन एच. 1987, समाजशास्त्रीय सिद्धांत की संरचना। रावत प्रकाशन जयपुर।

इकाई-4 आधुनिक परिप्रेक्ष्य जॉन डीवी

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 जॉन डीवी का जीवन परिचय एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि

4.3 जॉन डीवी तथा शिक्षा

4.3.1 शिक्षा की परिभाषा

4.3.2 शिक्षा का उद्देश्य

4.3.3 शिक्षा का तात्पर्य

4.3.4 शिक्षा और पाठ्यक्रम

4.3.5 शिक्षा पद्धति

4.4 जॉन डीवी का शिक्षा का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

4.4.1 आधुनिक शिक्षा जगत में डीवी की देन

4.5 जॉन डीवी का शिकागो विश्वविद्यालय में प्रयोगात्मक स्कूल

4.6 जॉन डीवी का आलोचनात्मक मूल्यांकन

4.7 सारांश

4.8 बोध प्रश्न

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप जान सकेंगे।

- जॉन डीवी के जीवन और शैक्षणिक कार्यों को जान पाएंगे।
- जॉन डीवी के शिक्षा से सम्बंधित विचारों को जानने में सफल होंगे।
- जॉन डीवी के शिक्षा से सम्बंधित आधुनिक परिप्रेक्ष्य को जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

जॉन डीवी दर्शनशास्त्र के छात्र होने के साथ–साथ शिक्षाशास्त्र के भी छात्र रहे हैं। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। उन्हें समाजशास्त्री कहना भी गलत नहीं होगा। डीवी ने शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक विद्यालयों की सुव्यवस्था पर अधिक बल दिया, क्योंकि इनके माध्यम से ही सामाजिक प्रगति संभव है। डीवी ने कहा है कि शिक्षा एक ऐसा साधन है जो कि व्यक्ति को समाज में व्यवहार करना एवं जीना सिखाता है। डीवी ने क्रिया द्वारा शिक्षा पर भी बल दिया। वास्तव में प्रगतिशील शिक्षा क्रियात्मक है। इसके अतिरिक्त डीवी ने खेल, रचना प्रकृति सहचर्य तथा भावभिव्यक्ति को भी शिक्षा का साधन माना है। डीवी शिक्षा को सामाजिक प्रगति का साधन मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का व्यावहारिक होना अत्यंत आवश्यक है। आधुनिक शिक्षा से प्रयोगवाद प्रवृत्ति का विकास करने में डीवी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

4.2 जॉन डीवी का जीवन परिचय एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि

डीवी का जन्म 1859 ई. में वरमांट (इग्लैण्ड) के बर्लिंगटन नगर में हुआ। इनके पिता एक साधारण दुकानदार थे। डीवी का प्रारम्भिक जीवन, ग्रामीण वातावरण में व्यतीत हुआ। वे सदैव अपने पिता की दुकान पर होने वाले वाद–विवाद में भाग लेते। वाद–विवाद के समय वे सदैव कुछ अलग और नवीन कहने की कोशिश करते थे। सन् 1879 में उन्होंने वरमाण्ट विश्वविद्यालय से 20 वर्ष की आयु में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। पांच वर्ष बाद उन्होंने जॉन होपकिन्स विश्वविद्यालय से दर्शन में पी0एच0डी0 की डिग्री प्राप्त की। सन् 1903 ई0 तक एक प्रोफेसर के रूप में मिशिगन तथा शिकागों विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य किया। सन् 1894 में शिकागो विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र विभाग में उन्होंने अपनी 'प्रयोगशाला विद्यालय' खोली, जिसने विश्व–लोकप्रियता प्राप्त की। अमेरिकन शिक्षा प्रणाली को डीवी के विचारों ने काफी प्रभावित किया। सन् 1904 ई0 से सन् 1939 ई0 तक उन्होंने कोलम्बो विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में

कार्य किया। इसके अन्तर्गत उन्होंने जापान, रूस, टर्की, चीन व अन्य देशों का भी भ्रमण किया और वे एक लेखक के रूप में भी स्थापित हुये।

4.3 जॉन डीवी तथा शिक्षा

शिक्षा' सामाजिक प्रक्रिया है; समाज से बाहर समाज के प्रति कर्तव्यों से विमुख होने पर उसकी कोई उपयोगिता/महत्ता नहीं रह जाती है। समाज की नकल स्कूल होना चाहिए, किन्तु स्कूल समाज का वह रूप है जहां आकस्मिक परिवर्तन संभव नहीं है। उसे हम एक विशेष प्रकार का समाज कह सकते हैं। स्कूल द्वारा ही विकास तथा रचनात्मकता–दोनों ही, बालक में आते हैं। सामाजिक कुशलता की शिक्षा के लिए स्कूलों का प्रादुर्भाव हुआ। बालकों की प्रवृत्तियों को पहचान कर, मनोविज्ञान की सहायता से उन्हें रचनात्मक कार्य में सम्मिलित किया जाना चाहिए। वास्तव में, **''शिक्षा, जीवन की क्रिया है, न कि किसी भविष्य के जीवन के लिए तैयारी है।''** डीवी रुचि तथा कार्यों को विभिन्न सामाजिक रूपों से ही सम्बंधित मानते हैं।

4.3.1 शिक्षा की परिभाषा –

शिक्षा की परिभाषा डीवी के शब्दों में, **''शिक्षा उन सब शक्तियों के विकास का नाम है जिनके द्वारा मनुष्य में अपने वातावरण पर नियंत्रण रखने तथा अपनी समस्त शक्तियों की सामर्थ्य उत्पन्न होती है।''** डीवी का निरन्तर यह मानना था कि विद्यालयों में शिक्षा बाहर की दुनिया से कटी हुई नहीं होनी चाहिए। विद्यालय के अंदर और बाहर शिक्षा प्रदान करने के लिए निरन्तरता लाने के लिए उनके सामाजिक हितों में आपसी सम्पर्क की अधिकता होनी चाहिए। विद्यालयों को संयुक्त गतिविधियों और सहभागी होने के भाव को स्थापित करना चाहिए तथा इसकी रक्षा करनी चाहिए। जब कोई विद्यालय अपने ऊपर सामाजिक सरोकार और समाज का दायित्व ले लेता है, तब निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि यह सामाजिक सरोकर व समझ विद्यालय से बाहर भी उपलब्ध होंगे फिर भी यह स्वीकार किया जा सकता है जब तक अध्ययन के नियमित ढंग से प्राप्त शिक्षा चरित्र को प्रभावित करती है, तब तक नैतिकता को शिक्षा के एकांकीकरण व उत्कर्ष का उद्देश्य मान लेना ठीक नहीं होगा। ऐसी शैक्षणिक योजना जिसमें शिक्षा ऐसे गतिविधियों व व्यवसाय से जुड़ी हो, जिसका उद्देश्य सामाजिक हो, वह उपयोगी होती है जब ऐसा हो जाता है तो विद्यालय एक सूक्ष्म समुदाय का रूप ले लेता है जो अपनी चारदीवारी के बाहर से सम्बंध अनुभवों के साथ निकटता से अन्तर्व्यहार के कारण जुड़ जाता है। ऐसी शिक्षा जो सामाजिक जीवन में भागीदारी की योग्यता विकसित करती है, वह शिक्षा के लिए आवश्यक पुर्नसमायोजन की क्षमता पैदा करती है।

4.3.2 **शिक्षा का उद्देश्य–**

जॉन डीवी एक प्रयोजनवादी हैं। उनका शिक्षा के किसी पूर्व निश्चित उद्देश्य में विश्वास नहीं है। वह कहते हैं कि **''शिक्षा का सदैव तात्कालिक उद्देश्य होता है और जहां तक क्रिया शिक्षाप्रद होती है, वहां तक शिक्षा उस साध्य को प्राप्त करती है।''** डीवी के अनुसार, शिक्षा को अपना स्वरूप समाज की प्रेरणा और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित करते रहना चाहिए, क्योंकि स्थिर रहने से मनुष्य की स्फूर्ति में जंग लगना शुरू हो जाता है जिससे वह कुण्ठित हो जायेगी और श्रेष्ठतम पद्धति भी गतिहीन होने से समाज का विकास भी अवरुद्ध हो जायेगा। इसलिए देश और काल की परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। अतः डीवी द्वारा बताये गये शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- जॉन डीवी क्रिया द्वारा सीखने की बात करते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इस प्रकार निर्धारित हों जो क्रिया की स्पष्टता व्यक्त करते हों।
- डीवी के अनुसार बालक में सार्वभौमिक चेतना उत्पन्न करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होता है। वह शिक्षा द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करे, जिससे प्रत्येक बालक को सम्पूर्ण मानव जाति के सामाजिक अभ्युत्थान में सक्रिय योगदान का अवसर प्राप्त हो सके।
- डीवी के अनुसार, शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक की शक्तियों को विकसित करना होता है।
- बालक के सम्मुख ऐसा वातावरण तैयार करना है, जिसमें कि प्रत्येक बालक समस्त मानव जाति की सामाजिक जागृति में सक्रिय रहकर योगदान करें।
- शिक्षा द्वारा बालक में जनतांत्रीय मूल्यों को विकसित किया जा सकता है।
- शिक्षा के द्वारा मनुष्य में परस्पर सहयोग और सामंजस्य की स्थापना की जानी चाहिए।
- डीवी के अनुसार, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को जीवन के लिए तैयार करना होता है, जिससे कि वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके।

4.3.3 **शिक्षा का तात्पर्य–**

बालक सभ्यता का विकास करने वाला है। उसके व्यक्तित्व से ही मानव–सभ्यता सृजित होती है। अतः शिक्षा का कार्य एवं उद्देश्य है ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण करना कि बालक उसमें रहकर मानव–जाति की सामाजिक जागृति में सफलतापूर्वक प्रतिभाग कर सके। बालक का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह सभ्यता का उचित उपयोग कर सके। शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपने गत अनुभवों को समझने के साथ–साथ भावी अनुभवों को भी समझ सके। शिक्षा बालक में ऐसी क्षमता पैदा कर सके कि वह सामाजिक

परिस्थितियों का डटकर सामना करें और संघर्ष में सफलता प्राप्त करें। सामूहिक कार्य में भाग लेने से सामाजक वातावरण निर्मित होता है और सामाजिकता का ज्ञान भी प्राप्त होता है। सामूहिक कार्य द्वारा बालक कार्य के उद्देश्य, प्रयोजन, आवश्यक विधि और योग्यता भी ग्रहण करता है। समाज के प्रति शिक्षा का कर्तव्य यही है कि वह व्यक्ति को सामाजिक और समाजोपयोगी व्यक्ति के रूप में प्रतिपादित करे। डीवी आत्मज्ञान को शिक्षा का उद्देश्य बताते हैं, क्योंकि उससे व्यक्ति का चरित्र निर्मित होता है। डीवी के अनुसार वही व्यक्ति चरित्रवान है जो सामाजिक सद्भाव और रुचि रखता है। शिक्षा के दो पहलू हैंः–

1–मनोवैज्ञानिक

2–लोक–संग्रहवादी।

इन दोनों में से हम किसी की भी अवहेलना एवं आलोचना नहीं कर सकते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, रुचियों और शक्तियों को समझ सकें, ताकि उनके विकास के लिए अनुकूल पाठ्यक्रम निर्मित कर सकें। सामाजिक दृष्टिकोण का अर्थ बालक के लिए उपयोगी सामाजिक वातावरण को निर्मित करना है जो समाज की दशाओं के अनुकूल हो। सामूहिक और वैयक्तिक दोनों ही शिक्षण–विधियों का प्रयोग करना है। इसके लिए लिए हमें सामाजिक दशाओं से भी परिचित होना आवश्यक है।

4.3.4 शिक्षा और पाठ्यक्रम–

जॉन डीवी का मत था कि अभी तक पाठ्यक्रम में क्रियाओं का स्थान नहीं है वरन् विषयों का है, किन्तु केवल विषय ही जीवन की आवश्यकता नहीं है। हमारे जीवन में केवल भूगोल या अंकगणित नाम के विषयों से कोई आवश्यक कार्य नहीं होता है। हां, जीवन के समाधान के लिए हमें अंकगणित, भूगोल, विज्ञान, इतिहास आदि अनेक विषयों के ज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है। इसीलिए प्रारंभ में ऐसी ही क्रियाओं का समावेश पाठ्यक्रम में किया जाना चाहिए जो अविकसित बालकों की बुद्धि के अनुसार ही हो और धीरे–धीरे उन क्रियाओं को जटिल समस्याओं के अनुरूप ढाला जा सके। जॉन डीवी ने समाज की आवश्यकतों, क्रियाओं, उपयोगिता, व्यावहारिकता तथा प्रयोगात्मकता पर आधारित पाठ्यक्रम बनाने के लिए कुछ सिद्धांतों को निर्मित किया, जो इस प्रकार है–

- **रुचि का सिद्धान्त–** डीवी के अनुसार, बालकों में चार प्रकार की रुचियां पायी जाती हैं, यथा–वार्तालाप एवं विचार विनिमय में रुचि, खोज में रुचि, रचना की रुचि तथा कलात्मक

अभिव्यक्ति में रुचि। डीवी के अनुसार इन रुचियों के आधार पर पाठ्यक्रम में भाषा, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, सिलाई, बागवानी, ड्राइंग, संगीत आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

- **लचीलेपन का सिद्धान्त–** जॉन डीवी अनम्य पाठ्यक्रम के पक्षधर नहीं तथा नम्य पाठ्यक्रम के प्रबल समर्थक थे, जिसे बालक की रुचि, अवस्था और आवश्यकतानुसार बदला जा सके अथवा जिसे देश और समाज की मांग के अनुकूल परिवर्तन में लाया जा सके। इससे बालकों की भिन्नता की आवश्यकता भी पूरी होगी।
- **क्रियाशीलता का सिद्धान्त–** पाठ्यक्रम की रचना में क्रियाशीलता को महत्व देते हुए डीवी ने लिखा है–''यदि ये क्रियाएं समुदाय की क्रियाओं का रूप ग्रहण करेंगी तो ये बालक में नैतिक गुणों और स्वतंत्रता के दृष्टिकोण का विकास करेंगी।'' इसलिए पाठ्यक्रम में उन्हीं क्रियाओं का समावेश होना चाहिए, जो उन्हें क्रियाशीला बनायें और उनके आत्मानुशासन को विकसित करते हैं।
- **सह सम्बन्ध का सिद्धान्त–** पाठ्यक्रम भली–भांति संयुक्त रूप से निर्मित किया जाना चाहिए, क्योंकि बालक का मस्तिष्क तो एक संयुक्त इकाई है, जो समन्वित रूप से ज्ञान अर्जित करता है। वह अलग–अलग शक्तियों का समूह नहीं है, जैसा कि शक्ति मनोविज्ञान में विश्वास करने वालों का कहना है। अतः जॉन डीवी ने सभी विषयों को सह–सम्बंधित रूप से पढ़ाये जाने की बात की है।
- **बालकेन्द्रित पाठ्यक्रम का सिद्धान्त–** बालक की मनोवैज्ञानिक विकास स्थिति को ध्यान में रखते हुए एवं उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों और कार्यों का सही–सही ज्ञान करके तब उसके अनुसार ही पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए। उसमें निहित विषय ऐसे होने चाहिए, जिन्हें बालक सरलता से एवं सही ढंग से समझ सके तथा उनके जीवन के लिए उपयोगी हो। जॉन डीवी का मत है कि बालक की बुद्धि इतनी विवेकनिष्ठ बन जाये कि वह स्वयं वस्तु, घटना तथा क्रिया के सब पक्षों का सूक्ष्म परीक्षण कर उसकी वास्तविकता की खोज स्वयं कर सके। डीवी के अनुसार बालक को इतना चेतन और जिज्ञासु बनाया जा सके कि वह अपनी प्रेरणा से प्रत्येक वस्तु के तथ्यों को जानने, पहचानने और समझने के लिए प्रयत्नशील बन सके। पाठ्यक्रम का उद्देश्य बालक में तर्क–शक्ति को विकसित करना है, उसे अन्धविश्वासी बनाना नहीं है। अतः पाठ्यक्रम के विषय और क्रियाएं वैयक्तिक रुचियों के अनुकूल हो, जिससे उसका विकास स्वाभाविक ढंग से पूर्ण हो जाये।
- **उपयोगिता का सिद्धान्त–** डीवी के अनुसार– **''मनुष्य की मूलभूत सामान्य समस्याएं भोजन, घर, वस्त्र, घर की सजावट और आर्थिक उत्पादन, विनिमय तथा उपयोग से सम्बंधित है।''** डीवी का मानना है कि इन्हीं समस्याओं को हल करना जीवन का लक्ष्य है। अतः पाठ्यक्रम में उन विषयों एवं क्रियाओं को स्थान देना होता है, जो इन समस्याओं के समाधान में सहयोग दे सके।

4.3.5 **शिक्षा पद्धति–**

जॉन डीवी ने शिक्षण विधि के तर्क को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– **''विधि का अर्थ विषयवस्तु की उस व्यवस्था से है, जो उसको उपयोग के लिए सर्वाधिक प्रभावपूर्ण बनाती है। विधि विषयवस्तु के प्रतिकूल नहीं होती है, वरन् यह तो वांछित परिणामों की ओर विषयवस्तु का प्रभावकारी निर्देशन है।'' डीवी के अनुसार** शिक्षण की पद्धतियां हैं–

- **करके सीखना–** जॉन डीवी की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था ही क्रिया प्रधान है। उनका मत था कि **''सभी प्रकार की शिक्षा (सीखना) क्रियाओं द्वारा ही सम्भव है।''** डीवी ने पूरे प्रयोजनवाद को ही इसी सिद्धान्त का आधार बताया और कहा कि– **''केवल क्रिया से ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है और विकास भी संभव है।''**
- **समस्या समाधान पद्धति–** जब व्यक्ति किसी समस्या के समाधान के मार्ग में अग्रसर होता है, उसी समय उसकी विचार प्रक्रिया प्रारंभ होती हे। **डीवी के शब्दों में–'विचार समस्या का निराकरण है, विचार बौद्धिक चिन्तन है।'**
- **निरीक्षण विधि–** डीवी की समस्यामूलक शिक्षण विधि में आगमन, निगमन तथा निरीक्षण विधि को प्रयोग में लाया गया है।
- **क्रियाशील पद्धति–** जॉन डीवी कहते हैं कि क्रिया द्वारा ही मस्तिष्क की उपज है और क्रिया से ही मस्तिष्क का विकास होगा।
- **प्रोजेक्ट पद्धति–** जॉन डीवी के शिष्य किलपैट्रिक ने इसका प्रतिपादन किया। प्रोजेक्ट से आशय है–विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए मन से स्वीकार की गई सामाजिक पर्यावरण में होने वाली प्रक्रिया है।
- **खेल पद्धति–** बालक खेलते समय स्वाभाविक रूप से अनेक वस्तुओं का निर्माण करता है, अतः डीवी के अनुसार बालक की प्रारम्भिक शिक्षा में समस्यापूर्ण कार्य देकर खेलों द्वारा उसका समाधान करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना होता है।

  शिक्षक का मुख्य कार्य है कि वह बालकों के समक्ष परिस्थितियां उत्पन्न करें, जिससे वे समस्या की पहचान कर सकें। उसके पश्चात् योजना बनाकर समस्या का क्रियान्वयन किया जा सके। बालक एक दूसरे के सहयोग से समस्या को सक्रिय रूप से सुलझाया जा सके। समस्या के क्रियान्वयन के पश्चात निश्चित परिणामों को प्राप्त कर नवीन मूल्यों को निर्मित किया जा सकता है।

4.4 जॉन डीवी का शिक्षा का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

अपनी दार्शनिक विचारधारा के आधार पर जॉन डीवी ने शिक्षा का आमूल परिवर्तन करने के निर्मित नवीन शिक्षा सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। **जॉन डीवी के अनुसार–''शिक्षा अनुभव और विकास का एक साधन है जिसमें आदान–प्रदान तथा सहयोग की क्रिया निहित होती है।''** डीवी शिक्षा को दर्शन का ही रूप समझाते हुये कहते हैं कि व्यापक रूप से तो दर्शन शिक्षा तथा चिन्तन का ही रूप है, किन्तु संकुचित क्षेत्र में शिक्षा दर्शन का सिमटा हुआ रूप है। आज तक जितने भी समाजशास्त्रीय शिक्षाशास्त्री हुये हैं, सबका यही सिद्धान्त रहा है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक के भावी जीवन के लिए सहायता प्रदान करना है। जॉन डीवी ने इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुये कहा कि शिक्षा स्वयं ही जीवन है, वह जीवन के लिए तैयारी नहीं है। इसका अर्थ यह है कि बालक जब विद्यालय में प्रवेश करता है, उस समय भी उसी अवस्था के अनुरूप उसकी आवश्यकताएं होती हैं, उन आवश्यकताओं की उसी समय पूर्ति करते हुए आगे बढ़ना ही वास्तविक शिक्षा कहलाती है। **'पढ़ोगे तो आगे तुम्हारे काम आयेगा'** इसके बदले हुये स्वरूप **'जो सीखते रहोगे, तुम्हारे काम आता रहेगा'** ही डीवी का सिद्धांत है, जो डीवी की आधुनिक शिक्षा की ओर संकेत करता है। डीवी के अनुसार आगे काम आने वाले विषय पढ़ाने के बदले स्कूल का कार्य यह है कि छात्रों की रुचि के अनुसार उनकी शक्तियों पर विचार करें, जिससे अपने वातावरण पर अधिक कुशलता से नियन्त्रण कर पायें। जॉन डीवी ने शिक्षा को आजीवन चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में माना है, जिससे बालक की शक्तियों का निरन्तर विकास होता चला जाता हैं

जॉन डीवी ने शिक्षा को एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में माना है, क्योंकि जीवन में **'पूर्ण प्राप्त'** और शिक्षा में **'अन्तिम उपलब्धि'** को वह स्वीकारते नहीं हैं। मनुष्य के सामने नित्य नवीन समस्याएं उपस्थित होती हैं। शिक्षा वह प्रक्रिया है, जो मनुष्य को इन परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको बदलने में सहायता प्रदान करती है। जॉन डीवी के अनुसार, मनोवैज्ञानिक पक्ष ही शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ आधार है। वह बालक की मूल प्रवृत्तियों, जन्मजात शक्तियों, रुचियों एवं बुद्धि आदि को ध्यान में रखते हुये शिक्षा देने के पक्षधर थे। बालक को किसी कार्य में जितनी अधिक रुचि होती है, उतनी ही अधिक उनकी इच्छा शक्ति भी होती और वह उस क्रिया में उतनी ही लगन से कार्य करता है। जॉन डीवी ने रुचि का विश्लेषण चार प्रकार से किया है–

- **वार्तालाप की रुचि**
- **अन्वेषण एवं परीक्षण की रुचि**
- **रचना की रुचि**
- **कलात्मक अभिव्यक्ति की रुचि**

4.4.1आधुनिक शिक्षा जगत में डीवी की देन

डीवी प्रारम्भ में अवश्य निराश हुये जब उन्हें असफलताओं का सामना करना पड़ा, परन्तु उन्होंने अपने सिद्धांतों को नहीं छोड़ा। वह नई बातों को स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल देते थे। इसी कारण उनके विकास की गति तीव्रता से बनी रही। डीवी के शिक्षा दर्शन का जितना अधिक प्रभाव अमेरिका पर पड़ा उतना किसी अन्य दार्शनिक का प्रभाव नहीं पड़ा। डीवी ने विकास–सिद्धांतों को नया अर्थ देकर उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए कुछ साधनों को स्पष्ट किया है। स्कूल को समाज का सच्चा प्रतिनिधि और क्रियाशीलता का प्रतीक कैसे बनाया जाये, यह दिखाने के लिए डीवी ने बहुत प्रयास किया। जॉन डीवी की विचारधारा ने विवेकपूर्ण ढंग से शिक्षा देने, वैज्ञानिक प्रवृत्ति को अपनाने, समस्या जनित शिक्षा पर बल देने आदि अनेक नवीन मान्यताओं को वर्गीकृत किया, जिसे सभी विद्वान स्वीकारते हैं। वास्तव में डीवी का आधुनिक युग के महान विचारकों में अद्वितीय स्थान प्राप्त है, जिन्होंने विश्व भर में शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रभावित किया है। आधुनिक प्रगतिशील शिक्षा का अग्रदूत से डीवी को सम्बोधित किया जाये तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समस्त मानव समाज डीवी का अनन्त काल ऋणी रहेगा। प्रो0 बागले ने तो जॉन डीवी को केवल अमेरिका का ही नहीं, वरन् विश्व के शिक्षा शास्त्रियों का आधुनिक नायक कहा है। जॉन डीवी की आधुनिक शिक्षा पर देन निम्नलिखित है–

- जॉन डीवी ने शिक्षा के व्यक्तिनिष्ठ रूप को बदलकर सामाजिक दृष्टिकोण को परिवर्तित किया और जन–साधारण की शिक्षा को प्रमुखता दी।
- जॉन डीवी ने रचनात्मक क्रियाओं का सृजन करके विद्यालय के नीरस वातावरण को सक्रिय तथा चैतन्य बनाया और शिक्षकों की एकसत्तात्मक प्रवृत्ति का ह्रास करके वहां सरसता प्रदान किया।
- शिक्षा को प्रजातन्त्रीय सिद्धांतों पर आधारित करके और उसे क्रियात्मक रूप देकर डीवी ने आधुनिक विद्यालयों में सहकारिता, सहयोग, सद्भाव, स्वतंत्रता आदि भावों के जनन द्वारा एक नवीन चेतना उत्पन्न की।
- डीवी ने परम्परा–सम्मत आदर्शों को चुनौती देकर शिक्षा को वर्तमान जीवन की वास्तविकताओं के समक्ष उपस्थित करके विद्यालयों को रमणीय स्थलों के रूप में परिवर्तित किया।
- डीवी ने शिक्षा में मनोवैज्ञानिक विधि के प्रयोग द्वारा बालक की रुचियों और आवश्यकताओं के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित किया तथा बाल केन्द्रित शिक्षा को अपनाकर शिक्षा प्रणाली में नवीनता लायी।

- प्रयोग एवं परीक्षण के माध्यम से सीखने तथा कार्य की पूर्ति वास्तविक स्थिति में होने से विद्यार्थियों में सोचने तथा काम करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया।

4.5 जॉन डीवी का शिकागो विश्वविद्यालय में प्रयोगात्मक स्कूल

डीवी ने सन् 1896 ई0 में अपनी शिक्षण सिद्धांतों की परीक्षा करने के लिए और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए शिकागो विश्वविद्यालय में एक प्रयोगात्मक स्कूल स्थापित किया। इस स्कूल में 4 वर्ष–13 वर्ष के बच्चों को लिया जाता था, उनकी छोटी–छोटी टोलियां बना दी जाती थीं, एक टोली में छात्रों की संख्या 8–10 तक रहती थी तथा इन छात्रों को पढ़ाने के लिए वे शिक्षक नियुक्त किये जाते थे जो Kinder Garden के शिक्षण संस्थानों में शिक्षित होते थे। स्कूल का कार्यक्रम बड़े नियमों में नहीं बांधा जाता था, बल्कि प्रत्येक अध्यापक आवश्यकतानुसार नियमों में परिवर्तन लाने में स्वतंत्रता था, प्रत्येक अध्यापक यथाशक्ति इसलिए भी प्रयत्न करता था जिससे बालकों के लिए शिक्षण के लिए स्वाभाविक, नई और उत्तम पूर्ण विधियों का पता लगाया जा सके। डीवी के अनुसार, शिक्षा का व्यावहारिक होना अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक शिक्षा से प्रयोगावाद प्रवृत्ति का विकास करने में डीवी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

डीवी का यह विचार था कि बालकों को उसके स्वाभाविक झुकाव के अनुसार ही शिक्षा दी जानी चाहिए और उन्हें सहकारिता पूर्ण उपयोगी जीवन व्यतीत करने का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। डीवी ने इसी हरबर्ट की पंचपद प्रणाली का अनुसरण नहीं किया और उन बातों का अध्ययन कराना ठीक नहीं समझा जो बालक की रुचि के अनुरूप न हो। वह पूर्व–निश्चित पाठ्य वस्तु को पढ़ाना सही नहीं समझते। वह चाहते थे कि पाठ्यवस्तु बालक के वास्तविक जीवन से सम्बंधित एवं क्रियाशील होनी चाहिए। इसीलिए डीवी का प्रयोगात्मक स्कूल क्रियाशीलता कहलाता है। डीवी ने यह जानकर कि बालक में स्वाभाविक क्रियाशीलता होती है, अपनी शिक्षा का आधार क्रियाशीलता को ही बनाया। डीवी के अनुसार, लिखना–पढ़ना और अंक–गणित बालक की स्वाभाविक क्रियाशीलता के अन्तर्गत आता है। डीवी के इस प्रयोगात्मक स्कूल के दो प्रमुख सिद्धांत हैं–

- **सक्रिय सीखना**
- **अनुभव का पुनः निर्माण**

''क्रियाशीलता बनाये रखने से स्कूल नये भावों से सदैव अनुप्राणित बनते हैं तब इसका जीवन से सीधा सम्बंध बना रहता है और वह समाज का छोटा प्रतिरूप बन जाता है।'' इस प्रकार डीवी अपने स्कूल में बालक को केवल क्रियाशील बनाना ही सही नहीं समझते वरन् वह उसे योग्य, सामाजिक और उपयोगी

नागरिक भी बनाना चाहते हैं। डीवी ने अपने स्कूल में बहुत से अन्वेषण किये और उसी के आधार पर डीवी ने निम्नलिखित विशेषताएं उत्पन्न करने का प्रयास कियाः–

- रुचि एवं परिश्रम के पारस्परिक सम्बंध को समझना।
- स्कूल और समाज के सम्बंध को समझना।
- व्यक्तिवाद तथा समाजवाद के पारस्परिक सम्बंध को समझना।
- वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप समाज में अपूर्व परिवर्तन देखना।
- बालक तथा पाठ्यक्रम के पारस्परिक सम्बंध को समझना।
- उपरोक्त विरोधी सिद्धान्तों में संश्लेषण की खेज करना।

इन विशेषताओं के साथ–साथ डीवी का विश्वास था कि इन सामाजिक परिवर्तनों की गति रुकेगी नहीं। इसलिए स्कूल का कर्तव्य है कि वह इन परिवर्तनों के अनुकूल अपने को व्यवस्थित रखने का प्रयत्न करें। डीवी के शब्दों में, ''जैसे व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में परविर्तन होने पर उनकी विधियों में परिवर्तन आ जाता है, वैसे ही समाज की स्थिति में परिवर्तन आने से पाठ्यवस्तु एवं पाठन विधि में सुधार एवं परिवर्तन आवश्यक हो जाता है।''

4.6 जॉन डीवी का आलोचनात्मक मूल्यांकन

जॉन डीवी ने समय, देश और परिस्थिति की मांग को देखते हुये जन कल्याण की भावना से प्रेरित होकर शिक्षा सम्बंधी विचार प्रस्तुत किये हैं और इसमें भी संदेह नहीं कि डीवी की शिक्षा प्रणाली ने विद्यालयों का रूप बदला और बालकों में नई चेतना जागृत की, परन्तु उनके शिक्षा सिद्धांतों में स्थान–स्थान पर अनेक कमियां भी नजर आयी हैं। डीवी ने वर्तमान विद्यालयों की नीरसता से ऊबकर केवल प्रतिक्रियात्मक रोष की तृप्ति के लिए स्फूर्ति, क्रिया और स्वयं शिक्षा का एक रूपक तो खड़ा किया, किन्तु वह इतना सफल नहीं हुआ कि उसका व्यापक प्रयोग हो सके। इसीलिए डीवी के शिक्षा के व्यवहार दर्शन के लिए आवश्यक है। इस प्रकार डीवी के सिद्धांतों में कुछ कमियां, जो आलोचकों ने प्रस्तुत की हैं, वह इस प्रकार है–

- जॉन डीवी का यह विचार था कि बालक का विकास पशुओं और पौधों के विकास के समान होता है, यह सही प्रतीत नहीं होता। बालक तो बुद्धि, संकट एवं अनुकरण से सीखता है।
- डीवी 'करके सीखने' पर बल देते हैं, केवल करके सीखने की प्रवृत्ति तो पशुओं के लिए भले ही लाभप्रद हो, परन्तु मनुष्य केवल उसी के आधार पर ही नहीं बैठ सकता है।

- डीवी के शिक्षा सम्बंधी सिद्धांत फलवादी या उपयोगितावादी हैं, जिन्हें यथार्थवादी और आदर्शवादी स्वीकार नहीं करते।
- आदर्शवादी अपना ध्यान ईश्वरीय सत्ता में केन्द्रित करते हैं, जबकि डीवी का ध्यान केवल मानव केन्द्रित है।
- डीवी का यह कथन भी आपत्तिजनक है कि जीवन के आदर्श एवं मूल्य, पूर्व निश्चित नहीं होते। यदि ऐसा मान लिया जाये तो युग–युग सी संचित संस्कृति और आदर्शों का कोई महत्व नहीं रहेगा।
- आदर्शवाद के अनुसार सत्य स्थायी और अपरिवर्तनशील है, जबकि डीवी के अनुसार सत्य समयानुसार परिवर्तनीय है।
- आदर्शवादी जगत की विविध समस्याओं का सम्बंध लोक–परलोक दोनों से जोड़ देते हैं, जबकि डीवी इसका सम्बंध इस लोक की सामाजिक व्यवस्था से जोड़ते हैं।
- विषयों का सह सम्बंध दोषपूर्ण है, प्रत्येक विषय का शिक्षण इसी पद्धति से नहीं संचालित किया जा सकता है।
- डीवी केवल उस बुद्धि की कल्पना करते हैं जिसका सम्बंध मानव से होता है, परन्तु आदर्शवादी उस बुद्धि की कल्पना करता है, जो दैवीय है।

डीवी के अनुसार, जीवन और शिक्षण का मूल सिद्धांत विकास है। डीवी के विकास का अर्थ केवल इस भौतिक संसार तक ही सीमित हैं। आदर्शवादी भी विकास को ही जीवन एवं शिक्षण का मूल सिद्धांत मानते हैं, परन्तु उनके विकास का सम्बंध केवल इस भौतिक संसार से ही नहीं, वरन् आध्यात्मिक संसार से भी है। आदर्शवादियों का मानना है शिक्षण की व्यवस्था इस प्रकार से की जाए कि बालक इस जीवन को समझने के साथ–साथ उस अनंत शक्ति को भी समझ सके जो पूरे ब्रह्माण्ड को संचालित करती है। इस प्रकार डीवी के शिक्षा–सिद्धांत फलकवादी होने के कारण आदर्शवादियों तथा यथार्थवादियों को मान्य नहीं है एवं वह इस विचारधारा से बिल्कुल सहमत नहीं है।

जॉन डीवी की रचनाएं

जॉन डीवी ने कई पुस्तकों में अपने दार्शनिक विचारों तथा शिक्षा सिद्धांतों की व्याख्या करके शिक्षा पद्धति को प्रभावित किया। जॉन डीवी की शिक्षा सम्बंधी प्रसिद्ध रचनाएं निम्न हैं

- द स्कूल एण्ड द सोसाइटी– 1899

- द चाइल्ड एण्ड द करीकुलम– 1907
- द स्कूल एण्ड द चाइल्ड– 1907
- हाउ वी थिंक– 1910
- इण्ट्रेस्ट एण्ड एफर्ट इन एजूकेशन– 1913
- डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन– 1916
- रिकन्सट्रक्शन इन फिलॉसफी–1920
- ह्यूमन नेचर एण्ड काण्डक्ट– 1922
- एक्सपीरियन्स एण्ड नेचर– 1925
- सोर्सेज ऑफ ए साइंस ऑफ एजूकेशन– 1929
- एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशनल– 1938
- एजूकेशन टुडे– 1940
- प्रॉब्लम्स ऑफ मैन– 1946

4.7 सारांश

इस पाठ में बताया गया है कि डीवी के अनुसार स्कूल और विद्यालय का शिक्षा की प्रक्रिया का उद्देश्य लोकतंत्र में वृद्धि एवं विस्तार को स्थापित करना है। डीवी ने प्रचलित शिक्षण और परिदृश्य का छात्रों की सजगता तथा उसके अनुभवों और योग्यता को ध्यान में रखकर अपने जीवन की राह स्वयं निश्चित करने के पक्ष में विरोध किया। डीवी का कहना था कि विद्यालय सामाजिक अनुभवों के साथ जुड़े पाठ्यक्रम को विकसित करने का शुभ कार्य करे। डीवी ने पब्लिक विद्यालयों का विरोध किया, जो ज्ञान और जीवंत अनुभवों के बीच असम्बद्धता पैदा करते हैं। डीवी का यह सदैव मानना रहा है कि विद्यालय में शिक्षा बाहर की दुनिया से कटी हुई नहीं होनी चाहिए। इस पाठ में डीवी के शिक्षा के अर्थ, पाठ्यक्रम, उद्देश्य और पद्धति को बनाया गया है। उन्होंने शिक्षा के आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सम्बंध में जो अपने विचार दिए हैं उसे इस पाठ में बताया गया है। डीवी की प्रमुख शिक्षा सम्बंधी कार्यों और कृतियों की चर्चा इस इकाई में है।

4.8 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–1 जॉन डीवी के शिक्षा के आधुनिक परिप्रेक्ष्य की चर्चा करें।

प्रश्न–2 जॉन डीवी के जीवन परिचय के साथ उनकी शिक्षा सम्बंधी विचारों की चर्चा करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न–1 जॉन डीवी का जन्म कब हुआ था?

(अ) 1858 (ब) 1859 (स) 1857 (द) 1860

प्रश्न–2 डीवी ने पी0एच0डी0 की उपाधि कहां से प्राप्त की?

(अ) हॉपकिन्स विश्वविद्यालय (ब) वरमाण्ट विश्वविद्यालय

(स) शिकागो विश्वविद्यालय (द) मिशिगन विश्वविद्यालय

प्रश्न–3 डीवी की पुस्तक 'हाउ वी थिंक' कब प्रकाशित हुई?

(अ) 1909 (ब) 1911 (स) 1912 (द) 1910

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ के उत्तर

1. (ब)
2. (अ)
3. (द)

4.10 संदर्भ सूचीः–

- डीवी, जॉन; द स्कूल एण्ड सोसाइटी, कल्पाज पब्लिकेशन, दिल्ली 2017।
- मदान, पूनम, यादव, कमलेश कुमार, मिश्रा, ममता; शिक्षा के सामाजिक परिप्रेक्ष्य; अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा 2021।
- त्यागी, गुरुसरनदास, सिंह, डॉ0 बी0 बी0; शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य; श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2020।
- माथुर, डॉ एस0 एम0; शिक्षा के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य; श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2020।
- डीवी, जॉन; एजूकेशन टुडे; प्रेजर पब्लिशर अमेरिका 1970।
- भार्गव, महेश; सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं आधुनिक शिक्षा; विभोर ज्ञानमाला, आगरा 2014।

इकाई-5 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य माइकल एप्पल

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य की भूमिका

5.3 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य माइकल एप्पल

5.4 सारांश

5.5 बोध प्रश्न

5.6 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्देश्य

इस अध्याय मे आप जान सकेंगे की आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य को माइकल एप्पल ने क्या विचार अभिव्यक्ति किया है।

- ❖ आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य की भूमिका को आप जानेंगे।
- ❖ शिक्षा के परिप्रेक्ष्य मे माइकल एप्पल के विचार को आप समझ सकेंगे।
- ❖ आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य माइकल एप्पल के विचार को जान सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

माइकल एप्पल और समाजशास्त्र के लिए, आलोचनात्मक चिंतन, समालोचना और सामाजिक परिवर्तन के दशकों में बहुत कुछ बदल गया है। निश्चित रूप से ऐप्पल की विद्वता का इस प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव पड़ा है, जिसने स्कूली जीवन और स्कूली शिक्षा को शैक्षिक सिद्धांत और व्यवहार और, निर्विवाद, सामाजिक आलोचना को केंद्र में स्थापित किया है। इसके केंद्र में सामाजिक और राजनीतिक रूढ़िवादिता को चुनौती देने या अपने और दूसरों के अनुभवों की गंभीर वास्तविकताओं के संपर्क में रहने के लिए ऐप्पल की अटूट प्रतिबद्धता है। इस मामले को साबित कर दिया जब प्रक्रिया ने व्यक्तिगत रूप से आयोजित और बचाव किए गए सिद्धांतों के पुनर्मूल्यांकन की मांग की थी।

शिक्षा के नये समाजशास्त्र ने स्कूल को बाहरी मूल्यांकन और आलोचना के लिए खोल दिया। कामकाजी वर्ग के जीवन की वास्तविकताओं का प्रतिकार करने या उन्हें कम करने के लिए अब स्कूलों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यहां सामाजिक और भौतिक सफलता दरवाजे तक पहुंचने से कहीं अधिक थी, क्योंकि यह कक्षा थी, न कि स्कूल जहां सीखना होता था। स्कूली शिक्षा ने समाज के भीतर विभाजन को खत्म नहीं किया, और शिक्षाशास्त्र, सामग्री और छिपे हुए पाठ्यक्रम के माध्यम से उन्हें मजबूत किया । सूक्ष्म और कभी–कभी इतने सूक्ष्म रूपों को ज्ञान हस्तांतरण के प्रकट और अंतर्निहित रूपों ने वर्ग विभाजन को बढ़ावा दिया यह सब बाहर से स्पष्ट है। सिद्धांतकारों ने प्रस्तावित किया कि अतिरिक्त स्कूली शिक्षा वर्ग असमानता को खत्म नहीं करेगी, बल्कि इसे सुदृढ़ करने का काम करेगी। शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर मॉडलों को क्रमबद्ध करने से राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रभावों को नजर अंदाज कर दिया गया ।

5.2 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य की भूमिका

शिक्षा का नया समाजशास्त्र संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम में उभरा। लेकिन नया समाजशास्त्र शायद ही आलोचनात्मक जांच का एक एकीकृत था। स्कूल ने स्वयं कई वैचारिक परंपराओं और सामाजिक–सांस्कृतिक गतिशीलता का एक मिश्रण तैयार किया, जिसमें विभाजनकारी पद्धतिगत दृष्टिकोण और स्वयं समाज के सैद्धांतिक अध्ययन के साथ–साथ नए शोध पर जोर दिया गया। न ही नए समाजशास्त्र का श्रेय किसी एक वैचारिक स्थिति या आदर्श को दिया जा सकता है। यह केवल मार्क्सवादी सिद्धांत से प्रेरित आंदोलन नहीं था हालाँकि नव–मार्क्सवाद इस आंदोलन को काफी हद तक सूचित किया। इस स्वीकारोक्ति के लिए ज्ञान का उत्पादन और प्रसार मनमाने तरीकों से नही किया जाता है, कि शिक्षा राजनीतिक संघर्ष और प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र है, इसका श्रेय शायद ही अकेले एक स्कूल को नही दिया जा सकता है।

उत्तरी अमेरिका में, समाजशास्त्र सत्तर के दशक के मध्य तक मार्क्सवादी सिद्धांत के गहराई से प्रभावित नहीं था, क्योंकि तब तक ऐसा था कि समाजशास्त्र ने अपनी वास्तविक महत्वपूर्ण बढ़त हासिल कर ली थी अमेरिकी संशोधनवादी सिद्धांत, ब्रिटिश घटना विज्ञान था। आलोचनात्मक सामाजिक सिद्धांत तर्कसंगत रूप से, जब समय आया तो माइकल एप्पल संयुक्त राज्य अमेरिका में शिक्षा के नव–मार्क्सवादी सिद्धांतों को लागू कराने वाले पहले विद्वानों में से एक थे और यहां महत्वपूर्ण प्रभाव के रूप में खड़े थे। जैसे–जैसे चर्चा समृद्ध और अधिक गहन होती गई, शिक्षक भी इस झड़प में शामिल हो गए। हालाँकि, नए समाजशास्त्र के परिचित में आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि के लिए बेहतर सराहना की जा सकती है, या वंशावली से संबंधित बहसों को दरकिनार करने वाली एक अपील है। शिक्षकों ने प्रमुख दर्शकों में से एक के रूप में कार्य किया क्योंकि वे सामरिक संचालन और आलोचना की अग्रिम पंक्ति में बने रहे। नया समाजशास्त्र स्कूल और समाज पर लंबे समय से चली आ रही धारणाओं की अवहेलना में उभरा। व्यक्तिगत गतिशीलता और गुणात्मक सामाजिक व्यवस्था के लिए एक समतावादी राहत के रूप में स्कूल का अध्ययन, फिर असमानता के शासन के सामाजिक और सांस्कृतिक पुनरुत्पादन के रूप में स्कूल के कार्य को फिर से परिभाषित करने के लिए प्रेरित हुआ। विचारधारा, पुनरुत्पादन और प्रतिरोध वैचारिक विषयों को संगठित करने के रूप में उभरे, समाजशास्त्री उन तरीकों के साक्षी बने जिनसे स्कूली ज्ञान और अभ्यास कक्षा के भीतर अर्थ का निर्माण करते हैं। वैचारिक आलोचना वह थी जो वैचारिक रूप से आंदोलन के विभिन्न चरणों को सूचित करती थी, विचारधारा से ध्यान हटाकर पुनरुत्पादन और अंततः आंतरिक अंतर्विरोध और प्रतिरोध की ओर ले जाने वाला आंदोलन। वैचारिक आलोचना ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट सामाजिक संबंधों के उत्कृष्ट और प्राकृतिक ज्ञान में सफल विस्थापन के खिलाफ एक व्यावहारिक संघर्ष के रूप में खड़ी हुई।

उत्तरी अमेरिका और उसके बाहर पाठ्यक्रम, ज्ञान और स्कूली शिक्षा को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर माइकल एप्पल के लेखन का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। हालाँकि एप्पल शायद अपने पाठ आइडियोलॉजी एंड करिकुलम के लिए सबसे ज्यादा जाने जाते है, एप्पल ने शिक्षा और शक्ति जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों की एक सूची तैयार करते हुए प्रचुर मात्रा में प्रकाशित किया है। उस पर एप्पल के ध्यान ने पाठ्यक्रम चयन और संगठन की प्रक्रिया को देखने से हमारे नजरिये को गहराई से प्रभावित किया है। वह इस सामान्य संवेदी धारणा की निंदा करते हैं कि स्कूल तटस्थ संस्थान हैं, या स्कूल की प्रक्रिया और अनुष्ठान सर्वोत्तम प्रथाओं के मॉडल से विकसित होते हैं। वास्तव में अधिकांश शैक्षिक अनुसंधान पहले से मौजूद तकनीकी, सांस्कृतिक और आर्थिक नियंत्रण प्रणालियों की सेवा करते है और उन्हें उचित ठहराता है ऐप्पल दिखाते है कि कैसे तटस्थता का भ्रम उन लोगों को अशक्त कर देता है जिन्हें समर्थन की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। उन्होंने नोट किया कि कैसे स्कूलों को अक्सर राजनीति से ऊपर माना जाता है, कि उन्हें सभी के लिए समान अवसर प्रदान करने वाले गुणात्मक और निष्पक्ष माना जाता है।

5.3 आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य माइकल एप्पल

माइकल एप्पल विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय, मैडिसन में शिक्षाशास्त्र के प्रोफेसर और शिक्षा के एक प्रमुख सिद्धांतकार हैं। यहाँ वे बताते हैं कि किस तरह शिक्षा चुनिंदा समूहों को बाहर रखने के लिए काम करती है। स्कूल सिर्फ़ लोगों को नियंत्रित नहीं करते वे अर्थ को नियंत्रित करने में भी मदद करते हैं। माइकल एप्पल स्कूल–आधारित वातावरण में सामाजिक विनियमन की जांच करने में एक प्रभावशाली शक्ति रहे हैं। आरंभ में, उन्होंने माना कि स्कूली शिक्षा छात्रों को मानविकीकृत शिक्षण स्थितियों और आचरण के नियमों, कक्षा संगठन और छात्रों के विशिष्ट समूहों के शिक्षकों द्वारा उपयोग की जाने वाली अनौपचारिक शैक्षणिक प्रक्रियाओं सहित एजेंडा दोनों के माध्यम से आकार देती है। एप्पल ने विद्वानों, अभ्यासकर्ताओं और छात्रों को स्कूल के दैनिक अनुष्ठानों और गतिविधियों में अंतर्निहित शिक्षा और शक्ति के बीच संबंधों का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित किया। छिपे हुए पाठ्यक्रम की गुप्त पेचीदगियों की जांच करते हुए माइकल एप्पल की विद्वता ने कक्षा प्रक्रियाओं में आधिपत्य संरचनाओं के विश्लेषण और विवरण में गहरा योगदान दिया है। हाल के दिनों में, और जवाबी कार्रवाई करते हुए, ऐप्पल ने न्यू राइट प्रोटोकॉल से जुड़ी मान्यताओं और तंत्रों की पहचान की है और उनकी आलोचना की है। समकालीन स्कूली शिक्षा और सामान्य रूप से समाज में नव–उदारवादी रणनीति और पैठ को समझाने और संहिताबद्ध करने की आवश्यकता को पहचानते हुए, एप्पल ने हमें नए विवेकवाद, निजीकरण और उपयोगकर्ता की पसंद जैसे शासन रूपों को रेखांकित करने वाली संभावित देनदारियों के प्रति जागृत किया है। ऐप्पल ने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रियाओं के व्यापक सेट को व्यक्त और समीक्षा की है, जिसे वैश्वीकरण के रूप में जाना जाता है, और

संभावित हानिकारक परिणामों के बारे में कभी–कभी उदासीन जनता को आगाह किया है। इन क्षेत्रों में और कई अन्य क्षेत्रों में एप्पल का समाजशास्त्र,शिक्षा और सार्वजनिक नीति के क्षेत्र पर एक निर्णायक प्रभाव पड़ा है। लिखना और प्रकाशित करना जारी रखते हुए उन्होंने शिक्षार्थियों,शिक्षकों और विद्वानों की पीढ़ियों को आवश्यक अंतर्दृष्टि प्रदान की है। शिक्षा के नए समाजशास्त्र के एक प्रारंभिक सदस्य के रूप में वह पिछले पचास वर्षों के सबसे प्रभावशाली शिक्षकों/विद्वानों में से एक हैं। उनके संदेश के अक्सर गंभीर भाव के बावजूद हम इस अहसास से सांत्वना ले सकते हैं कि माइकल एप्पल की सतर्कता कायम है।

माइकल एप्पल इसमें कोई संदेह नहीं है कि मैं मार्क्स से और काफी संख्या में मार्क्सवादी और नव–मार्क्सवादी सिद्धांतों से, विशेष रूप से राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों से, राज्य के सिद्धांतों से और उतना ही महत्वपूर्ण रूप से सांस्कृतिक रूप, सामग्री से प्रभावित रहा हूं। मेरी सोच का – इसमें कई अन्य बातें शामिल हैं। अल्थुसेर, ग्राम्शी, लुकाक्स, रेमंड विलियम्स, मार्क्यूज़, बेंजामिन, एडोर्नो, पियरे, हेबरमास, स्टुअर्ट हॉल, और कई अन्य महत्वपूर्ण है कि मैं अस्तित्वगत और संरचनात्मक घटना विज्ञान जैसी चीजों से बहुत प्रभावित था, विशेष रूप से अल्फ्रेड शुट्ज़ के काम से हमें रोजमर्रा के ज्ञान की सामाजिक संरचना के शक्तिशाली सिद्धांत दिए और मर्लेउ–पोंटी जिन्होंने हमें समान रूप से शक्तिशाली सिद्धांत दिए घटना विज्ञान. कुछ मायनों में, मेरी परियोजना आंशिक रूप से मार्क्सवाद के साथ सामाजिक घटना विज्ञान का एकीकरण रही है। इसलिए मेरे लिए सांस्कृतिक संघर्षों के महत्व और संस्कृति की सापेक्ष स्वायत्तता की नव–मार्क्सवादी समझ का महत्व है। ज्ञान के समाजशास्त्र में मेरी पृष्ठभूमि ने निश्चित रूप से कम से कम कहने में मदद की। इस चर्चा में आगे बढ़ने के लिए, मुझे वर्तमान में शिक्षा में मार्क्सवाद से जुड़े कुछ मुद्दों पर चल रही बड़ी बहस के बारे में कुछ बातें कहने की ज़रूरत है। यहां मुझे एक निबंध का सहारा लेना होगा जो मैंने एजुकेशनल थ्योरी जर्नल के लिए शिक्षा में हाल के मार्क्सवादी और मार्क्सवादी–प्रभावित कार्यों पर और अपनी नवीनतम पुस्तक, एजुकेशन चेंज सोसाइटी पर लिखा है? इसके लिए जरूरी है कि मैं यहां कुछ विस्तार में जाऊं ।

कई मायनों में, आलोचनात्मक छात्रवृत्ति वर्तमान में विरोधाभासी स्थिति में है। मार्क्सवादी समझ को बहाल करने में इसकी भूमिका है। लेकिन इन समझ के इतिहास का हिस्सा रही कई रिडक्टिव प्रवृत्तियों से सावधान रहना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। मार्क्सवादी परंपराओं के बारे में कई व्यापक रूप से प्रचलित रूढ़ियाँ हैं । बहुवचन महत्वपूर्ण है। सबसे प्रभावशाली में से एक यह है कि मार्क्सवादी सिद्धांतों में सब कुछ अर्थव्यवस्था के लिए कम करने योग्य है। दिलचस्प बात यह है कि यह नवउदारवाद है जो हर चीज को आर्थिक जरूरतों तक सीमित कर देता है, ध्यान से पढ़ने पर मार्क्सवाद नहीं। निःसंदेह, कई बार, विशेष रूप से अपने अधिक लोकप्रिय उन्मुख कार्यों में, जब मार्क्स इस तरह से लिखते हैं कि वे कहते प्रतीत होते हैं

कि राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र वास्तव में पूरे समाज केवल आर्थिक के प्रतिबिंब हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि जैसा कि जेएल ऑस्टिन हमें याद दिलाते हैं, भाषा का उपयोग कई चीजों के लिए किया जा सकता है उदाहरण के लिए, वर्णन करने, समझाने, वैध बनाने और संगठित करने के लिए। मार्क्स के लिए, ये सभी महत्वपूर्ण थे और उनका अधिकांश लेखन अनेक कार्यों को दर्शाता है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि वह उन्नीसवीं सदी में लिख रहे थे। उनके विश्लेषणों को उस समय की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों और बहसों का जवाब देने और मौजूदा सामाजिक–आर्थिक और दार्शनिक परंपराओं को बनाने और बाधित करने के रूप में, इंटरटेक्स्टुअल रूप से पढ़ने की आवश्यकता है। अगर मार्क्सवादी परंपराएँ स्थिर रहीं, उन्नीसवीं सदी की धारणाओं और बहसों में बंद रहीं तो मैं वास्तव में निराश हो जाऊँगा। मार्क्स एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे; लेकिन जैसे–जैसे दुनिया बदलती है, प्रतिभाओं को भी सुधारने, अधिक सूक्ष्म बनाने, उनके साथ बहस करने की आवश्यकता हो सकती है।

फिर भी यह समझना महत्वपूर्ण है कि जब कोई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं या प्रवृत्तियों के पीछे सामाजिक, राजनीतिक, या यहां तक कि सैन्य उद्देश्यों और गतिशीलता की मार्क्स की विस्तृत जांच को पढ़ता है, तो वह अक्सर पा सकता है कि उनके विवरण और विश्लेषण हमेशा ऐसी चीजों को सतही अभिव्यक्तियों के रूप में चित्रित नहीं करते हैं। भौतिक शक्तियां कभी–कभी राजनीति, कला और सामाजिक जीवन पर सीधे तौर पर अपनी छाप छोड़ती हैं। लेकिन उनका प्रभाव आम तौर पर इससे भी अधिक दीर्घकालिक और भूमिगत होता है। हालाँकि, इसने मार्क्सवादी परंपराओं के कुछ हिस्सों को काफी संक्षिप्त विश्लेषणों और स्पष्टीकरणों की ओर बढ़ने से नहीं रोका है। इस प्रकार, जबकि अपने अधिक सूक्ष्म लेखन में मार्क्स स्वयं शिक्षा के अंदर और बाहर अपने कुछ अनुयायियों की तुलना में कम रिडक्टिव थे, नियतिवाद के अपेक्षाकृत यंत्रवत सिद्धांतों की विरासत अक्सर हाल के कुछ मार्क्सवादियों में आर्थिक और वर्ग न्यूनीकरणवाद के रूप में दिखाई देती है। लेकिन यही एकमात्र ख़तरा नहीं है.कई प्रगतिशील विद्वान और कार्यकर्ता अक्सर उन सभी चीज़ों को असाधारण मानते हैं जो दोनों वर्गों दुर्भाग्य से अभी भी अक्सर एक सरलीकृत दो वर्ग मॉडल के लेंस के माध्यम से देखी जाती हैं और पूंजीवाद को केवल एक आर्थिक प्रणाली के रूप में एकमात्र प्रमुख प्रेरक गतिशील के रूप में शामिल नहीं करती हैं।

मुझे लगता है कि इसके वास्तव में कुछ गंभीर हानिकारक प्रभाव हुए हैं और कई बार बड़े पैमाने पर अलंकारिक विश्लेषण किए गए हैं और यहां तक कि संस्कृति और राज्य की राजनीति और नस्ल और लिंग से जुड़ी अपेक्षाकृत स्वायत्त राजनीति दोनों की विशिष्टताओं की अनदेखी की गई है। यह एक अलग अफ़सोस की बात है, क्योंकि मार्क्सवादी और नव–मार्क्सवादी परंपराओं की अंतर्दृष्टि से अभी भी बहुत कुछ सीखना बाकी है। यह विशेष रूप से खतरनाक है यदि हम रुचि रखते हैं, जैसा कि मुझे लगता है कि

महत्वपूर्ण शिक्षकों को, स्कूली शिक्षा और सामान्य रूप से शिक्षा की भूमिका में सामाजिक परिवर्तन में होना चाहिए।

एक परिणाम यह हुआ है कि बहुत से आलोचनात्मक विश्लेषकों के लिए इस प्रश्न का उत्तर है कि क्या शिक्षा समाज को बदल सकती है। तभी जब यह वर्ग सभी को आम तौर पर खंडित संस्थाओं के बजाय संपूर्ण के रूप में देखा जाता है और पूंजीवादी को चुनौती देती है। आमतौर पर केवल भुगतान श्रम प्रक्रिया। ऐसी चुनौतियाँ निःसंदेह महत्वपूर्ण हैं। हालाँकि, अन्य चुनौतियाँ, या तो कम महत्वपूर्ण हो जाती हैं या केवल पूंजीवादी संबंधों और संरचनाओं पर सीधे कार्य करने की उनकी सहायक भूमिका के लिए महत्व दी जाती हैं। मैं यहां गलत नहीं समझा जाना चाहता। मैंने कई स्थानों पर तर्क दिया है कि वर्ग संबंध और राजनीतिक अर्थव्यवस्था की गतिशीलता और संरचनाएं जो स्थानीय,राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी हैं, हमारे समाजों के संचालन के तरीकों से निपटने के लिए मौलिक हैं। विशेष रूप से आज के संकट में वर्ग संबंधों और आर्थिक गतिशीलता और संरचनाओं की शक्ति को न देखने के लिए किसी को वास्तविकता से पूरी तरह से अलग दुनिया में रहना होगा। इस तथ्य को नजरअंदाज करना कि पूंजीवाद वास्तव में वैश्विक हो गया है और बेहद विनाशकारी तरीके से इतने सारे लोगों के जीवन में बेहद शक्तिशाली है, उन वास्तविकताओं से गंभीरता से जुड़ा नहीं है जिनका सामना अरबों लोग करते हैं।

लेकिन अन्य लोग रिडक्टिव विश्लेषण की भूमि में आगे बढ़ गए हैं, अक्सर यह मानते हुए कि महत्व की हर चीज को इन गतिशीलता और संरचनाओं तक सीमित किया जा सकता है और फार्मूलाबद्ध प्रतिक्रियाओं में संलग्न हो सकते हैं जो जटिलताओं को खत्म करते हैं, शक्ति संबंधों और उत्पीड़न को काटते हैं, और इस प्रक्रिया में दुर्भाग्य से संभावित सहयोगियों को दूर धकेल देते हैं। सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका से निपटने में यह अंतिम बिंदु विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भले ही यह रिडक्टिव दृष्टिकोण सच है और मुझे विश्वास नहीं है कि यह या तो सामाजिक आंदोलनों और सामाजिक परिवर्तनों के साथ उनके संबंध की पर्याप्त समझ है या व्यक्ति अधिकारों पर आंदोलनों की शक्ति की पर्याप्त मान्यता है,यह स्थिति अभी भी महत्वपूर्ण गठबंधनों को रोकती है।

ऐसा गठन किया जा रहा है जो शिक्षा के अंदर और बाहर प्रगतिशील परियोजनाओं के लिए बिल्कुल आवश्यक है, क्योंकि यह इस तथ्य को गलत पहचानता है या कम करता है कि इस समाज में जटिल और कई शक्ति संबंध हैं जो एक–दूसरे को सूचित करते हैं और काम करते हैं और यह विरोधाभासी संरचनाओं की विशेषता भी है और गति। मैंने दक्षिणपंथ से सीखने की आवश्यकता के बारे में बहुत कुछ लिखा है कि हमारे मतभेदों के पार गठबंधन सही तरीके से शिक्षा देने और क्या शिक्षा समाज को बदल सकती है जैसी

जगहों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और निभानी चाहिए? , इसलिए मैं यहां इन तर्कों का पूर्वाभ्यास नहीं करूंगा। लेकिन यह कहना पर्याप्त है, कि मुझे लगता है कि अनिवार्यवादी धारणाएं और वर्ग न्यूनतावाद, और अत्यधिक सरलीकृत फार्मूलाबद्ध और अलंकारिक प्रतिक्रियाएं, जो कि शिक्षा में माना जाता है मार्क्सवादी कार्यों के एक बड़े हिस्से में बहुत आम हो गई हैं, ने लोगों को आगे बढ़ाने का काम किया है। दुर्भाग्य से वे वास्तव में उस स्थान पर कब्ज़ा करने के अधिकार के लिए कुछ स्थितियाँ बनाने में मदद कर सकते हैं। मैं यहां और भी बहुत कुछ कहना चाहता हूं, लेकिन।

अब धर्मनिरपेक्ष शिक्षा पर मेरी स्थिति के बारे में आपके प्रश्न पर। सबसे पहले, मैं यह कहना चाहूँगा कि मैं वर्तमान सार्वजनिक अर्थात,राज्य समर्थित शिक्षा का नवीनीकरण नहीं करता हूँ। आम तौर पर सार्वजनिक क्षेत्र को हमेशा वर्गीकृत, नस्लीय और लिंग आधारित किया गया है, कुछ समूहों को सार्वजनिक क्षेत्र के सदस्यों के रूप में पूर्ण भागीदारी भूमिका और पहचान से वंचित किया गया है। नैन्सी रेज़र और हैबरमास की आलोचना सार्वजनिक क्षेत्र पर उनका विश्लेषण इस संबंध में बहुत विचारशील है। दूसरा,संयुक्त राज्य अमेरिका में, धर्मनिरपेक्ष स्कूलों ने कई तरीकों से धार्मिक और अर्ध–धार्मिक सामग्री, अनुष्ठानों और मान्यताओं की तस्करी की है, इसलिए धर्मनिरपेक्ष स्कूल नामक उस शुद्ध चीज़ को ढूंढना वास्तव में कठिन है। तीसरा, मैंने कई देशों में धार्मिक रूप से संबद्ध कार्यकर्ताओं के साथ काम किया है दक्षिण कोरिया में प्रतिबद्ध ईसाई कट्टरपंथी समाजवादी संघ के नेताओं, लैटिन अमेरिका में मुक्ति धर्मशास्त्र द्वारा निर्देशित आधार सामुदायिक आंदोलनों, तुर्की में इस्लामी नारीवादियों और अन्यत्र समान समूहों के साथ। जब कोई मुझसे कहता है कि यीशु वास्तव में एक कम्युनिस्ट थे, इसलिए हम भी अपना जीवन गरीबों और पीड़ितों के लिए संघर्ष में समर्पित कर देंगे, मैं इस भावना का गहराई से सम्मान करना चाहता हूं, भले ही मैं विशिष्ट धार्मिक आधारों से दृढ़ता से असहमत हो सकता हूं।

मैंने उन तरीकों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने में बहुत समय बिताया है, जिनमें अधिनायकवादी लोकलुभावन धार्मिक रूढ़िवादियों ने कई देशों में सार्वजनिक स्कूलों में पाठ्यक्रम की सामग्री और स्वरूप को बदलने का प्रयास किया है अक्सर बहुत सफलतापूर्वक। उनके अपने बेहद सीमित वैचारिक दृष्टिकोण को दर्शाता है। इन समूहों ने नवउदारवादियों और नवरूढ़िवादियों के साथ गठबंधन बनाया है जिसने शिक्षा को हानिकारक दिशाओं में धकेल दिया है। उन्होंने खुद को नए उत्पीड़ित के रूप में देखा है अक्सर दुनिया को देखने के पितृसत्तात्मक और नस्लीय तरीकों पर जोर देते हैं। उन्होंने वैध ज्ञान के केंद्र में रूढ़िवादी धार्मिक मानदंडों को स्थापित करने की कोशिश करके लोकतंत्र के बारे में हमारे विचारों को भी बदल दिया है। जलवायु परिवर्तन को, विकास की तरह, भौतिकी के अधिकांश मूल सिद्धांतों और बहुत कुछ को नकार दिया गया है। एक उदाहरण के रूप में, टेक्सास इंस्टीट्यूट फॉर क्रिएशन साइंस एक बहुत ही दक्षिणपंथी निजी

धार्मिक संस्थान को उस राज्य के पब्लिक स्कूलों के लिए विज्ञान शिक्षकों को प्रमाणित करने का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार, मुझे लगता है कि सार्वजनिक धर्मनिरपेक्ष स्कूल के विचार का बचाव न करने में बहुत वास्तविक खतरे हैं।

इसके बाद, नवउदारवाद के युग में, जहां जो सार्वजनिक है उसे आवश्यक रूप से बुरा माना जाता है और जो निजी है उसे आवश्यक रूप से अच्छा माना जाता है, इसके प्रभाव विशेष रूप से हानिकारक भी दिखाए गए हैं। बाज़ारों का पतला लोकतंत्र सहभागी स्वरूपों के मोटे लोकतंत्र का स्थान ले लेता है। जैसा कि मैंने एजुकेटिंग द राइट वे में दिखाया है, ऐसी नीतियां वास्तव में शिक्षा में और भी अधिक असमानताएं पैदा कर सकती हैं। इसके अलावा, जैसा कि चार्ल्स मिल्स ने तर्क दिया है, तर्कसंगत आर्थिक अभिनेता की तर्कसंगतता और उनकी नैतिकता के बारे में उनकी धारणाएं उस पर आधारित हैं जिसे वह नस्लीय अनुबंध कहते हैं। वास्तव में, मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम यह नहीं समझ सकते कि नवउदारवादी एजेंडे के पीछे क्या है जब तक कि हम इसके पीछे अंतर्निहित ताकतों के रूप में नस्ल और लिंग को एक साथ नहीं रखते।

पब्लिक स्कूल की रक्षा पर मेरी स्थिति के अन्य कारण भी हैं। मैं पब्लिक स्कूलों को हार और जीत दोनों के रूप में देखता हूं। कुछ आलंकारिक मार्क्सवादियों के विपरीत, जो स्कूलों को केवल पूंजीवाद के लिए विनम्र श्रमिक पैदा करने वाले कारखानों के रूप में चित्रित करते हैं, जैसा कि मैंने और अन्य लोगों ने दिखाया है कि स्कूल नस्लवाद–विरोधी संघर्षों के अखाड़े थे और जहां कार्यकर्ता पहचान बनती हैं और जहां उन्होंने गठन के लिए महत्वपूर्ण स्थलों के रूप में कार्य किया है। आधिपत्य–विरोधी आंदोलन जो स्कूल से अन्य स्थानों पर चले गए। मैं निम्नलिखित प्रश्न को भी हमेशा ध्यान में रखना चाहता हूँ यदि स्कूल पहले से ही वही कर रहे थे जो पूंजी और अन्य प्रमुख समूह चाहते थे, तो ये समूह सार्वजनिक स्कूलों से इतने नाराज क्यों हैं? मान्यता की राजनीति में निश्चित रूप से जीत हुई होगी और मान्यता की राजनीति में लाभ के साथ–साथ परिवर्तन के एजेंटों के रूप में लोगों की सामूहिक पहचान को बदलने में भी जीत हुई होगी। और इसके परिणामस्वरूप अन्य सामाजिक क्षेत्रों में और संघर्षों को बढ़ावा मिला है। मुझे ऐसा लगता है कि यह सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं और संभावनाओं की कहीं अधिक ईमानदार और द्वंद्वात्मक समझ है। सार्वजनिक और धर्मनिरपेक्ष स्कूलों पर संघर्ष इसका एक अनिवार्य हिस्सा है।

5.4 सारांश

आप इस बात से सहमत होंगे कि शिक्षा कोई स्थिर और अनैतिहासिक चीज़ नहीं है। वास्तव में, इतिहास पर ध्यान से नज़र डालने से पता चलता है कि जिसे हम शिक्षा कहते हैं, वह समय–समय पर बदलती

रहती है और अपनी प्राथमिकताओं को बदलती रहती है। आजकल आपको लग सकता है कि शिक्षा धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक होनी चाहिए; यह तकनीकी कौशल हासिल करने जैसा है, चाहे वह इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कानून और प्रबंधन में हो और आजीविका कमाना हो। लेकिन फिर, जैसा कि हमारे कुछ प्राचीन ग्रंथों में दर्शाया गया है, जब धार्मिक संस्थाएँ अत्यधिक शक्तिशाली थीं, शिक्षा धर्मनिरपेक्ष और तकनीकी होने से बहुत दूर, अनिवार्य रूप से आध्यात्मिक और धार्मिक थी। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक समाज की शिक्षा की अपनी धारणा होती है। शिक्षा को समझने के लिए हम क्या सीखते हैं, जिसे वैध ज्ञान माना जाता है, या जिस तरह से हम सीखते हैं उसे विशिष्ट समय और स्थान में संदर्भित या स्थित करना है।

इस वजह से, जैसा कि मैंने पहले कहा था, हालांकि मैं सार्वजनिक/धर्मनिरपेक्ष स्कूली शिक्षा की वर्तमान स्थिति का प्रशंसक नहीं हूं, मुझे लगता है कि हमें वास्तव में सार्वजनिक स्कूल के दृष्टिकोण और प्रथाओं को जीवित रखने के लिए कभी न खत्म होने वाले प्रयासों को जारी रखना चाहिए। निजीकरण और बाज़ारीकरण के युग में, ऐसा स्कूल अंतिम शेष सार्वजनिक संस्थानों में से एक है। इसकी रक्षा करना आम तौर पर जनता की रक्षा का एक अनिवार्य हिस्सा है।

5.5 बोध प्रश्न

1. आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य का माइकल एप्पल के विचारो की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में एप्पल के विचार की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. शिक्षा के लिए सरकारी स्कूलों की शिक्षा और निजीकरण स्कूली शिक्षा की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 सन्दर्भ ग्रंथसूची

- Apple, M. (1995). Education and power (second edition). Nueva York: Routledge.
- Apple, M. (2009). Global crises, social justice and education. Nueva York: Routledge.
- Anderson, Benedict. 1991. Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism. London: Verso.
- Anderson, James. 1988. The Education of Blacks in the South, 1860-1935. Chapel Hill NC: University of North Carolina Press.
- Anderson, Lorin W, and David R Krathwohl. 2001. A Taxonomy for Learning, Teaching and Assessing: A Revision of Bloom's Taxonomy of Educational Objectives. New York: Longman.
- Anderson, Perry. 1974a. Lineages of the Absolutist State. London UK: New Left Books
- Apple, Michael W. 2006. "Understanding and Interrupting Neoconservatism and Neoliberalism in Education." Pedagogies: An International Journal 1 (1): 21–26.
- Aronowitz, Stanley, and Henry Giroux. 1991. *Postmodern Education: Politics, Culture and Social Criticism*. Minneapolis MN: University of Minnesota Press
- Battiste, Marie, and James Henderson.2000. Protecting Indigenous Knowledge and Heritage: A Global Challenge. Saskatoon, Saskatchewan: Purich Publishing.
- Bernstein, Basil. 1971. Class, Codes and Control: Theoretical Studies Towards a Sociology of Language. Vol. 1. London: Routledge & Kegan Paul.

- Bernstein, Richard. 1994. Dictatorship of Virtue: Multiculturalism and the Battle for America's Future. New York: Alfred A. Knopf.
- John Fiske, Bob Hodge, and Graeme Turner, Myths of Oz: Reading Australian Popular Culture (Boston: Allen and Unwin, 1987)
- John Fiske, Reading the Popular (Boston: Unwin Hyman, 1989), for example,
- Michael W. Apple and Lois Weis, eds., Ideology and Practice in Schooling (Philadelphia: Temple University Press, 1983).
- Allen Hunter, Children in the Service of Conservatism (Madison: University of Wisconsin Institute for Legal Studies, 1988).
- James Moffett, Storm in the Mountains (Carbonate: Southern Illinois University Press, 1988)
- NCERT. (2000). National Curriculum Framework for School Education: A Discussion Document, New Delhi:
- NCERT. Pathak, Avijit. (2002). Social Implications of Schooling: Knowledge, Pedagogy and Consciousness, New Delhi: Rainbow.

इकाई -6 सामाजिक पुनरुत्पादन पियरे बोर्दियू

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पियरे बोर्दियू का जीवन परिचय

6.3 पियरे बोर्दियू की शैक्षणिक पृष्ठभूमि

6.4 पियरे बोर्दियू का सामाजिक पुनरुत्पादन परिप्रेक्ष्य

6.4.1 सामाजिक पुनरुत्पादन का तात्पर्य

6.4.2 पियरे बोर्दियू का सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत

6.5 पियरे बोर्दियू द्वारा समाजशास्त्र में किए गए कुछ प्रमुख कार्य

6.6 पियरे बोर्दियू की कुछ मुख्य बातें एवं पुस्तकें

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्न

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप–

- पियरे बोर्दियू के जीवन और शैक्षणिक योग्यताओं से परिचित हो सकेंगे।
- पियरे बोर्दियू द्वारा प्रतिपादित सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत को जान सकेंगे।
- पियरे बोर्दियू द्वारा समाजशास्त्र में दिए गए योगदान के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

फ्रांसीसी समाजशास्त्री होने के बाद भी बोर्दियू की लिखावट जर्मनशास्त्रियों की तरह क्लिष्ट थी। बोर्दियू ने पार्सन्स या वेबर की भांति कोई ऐसा समाजशास्त्रीय सिद्धांत तो नहीं प्रतिपादित किया जो उन्हें उन लोगों के समकक्ष खड़ा कर सके, परन्तु उनके द्वारा ऐसी अवधारणाओं को लोगों के सम्मुख रखा गया, जो कि सिद्धांत की तरह प्रचलित हैं। भारत में बोर्दियू को समाजशास्त्री की तरह ही नहीं अपितु दार्शनिक की भांति भी प्रसिद्धि प्राप्त है। बोर्दियू ने सामाजिक पुनरुत्पादन परिप्रेक्ष्य के विषय में बताया कि कैसे शिक्षा एवं आदर्श के माध्यम से एक विशिष्ट समाज अपने लाभ के अनुसार अपने चारों तरफ अपने अनुकूल वातावरण का निर्माण करता है और कमजोर समाज से स्वयं को श्रेष्ठ साबित करने में लगा रहता है। बोर्दियू ने पूंजी, सांस्कृतिक पुनरुत्पादन, आदत, क्षेत्र एवं सामाजिक वर्ग के बीच के सम्बंधों के विषय में लोगों को अपने शोधों और लेखों के माध्यम से बताने का प्रयत्न किया है।

6.2 पियरे बोर्दियू का जीवन परिचय

पियरे बोर्दियू का जन्म 1 अगस्त सन् 1930 मे फ्रांस के उत्तर–पश्चिम में स्थित छोटे से नगर देंग्यू (Denguin) में एक किसान परिवार में हुआ। उनके दादा और पिता बंटाई पर खेती करते थे। बाद में उनके पिता ने पोस्ट मैन की नौकरी कर ली। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पेरिस में हुई और उन्होंने पेरिस में दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया। उन्होंने लगभग एक वर्ष तक शिक्षक के रूप में कार्य किया। उसके बाद अलजीरिया के स्वतन्त्रता युद्ध में उन्होंने सन् 1958 से सन् 1962 के बीच फ्रांसीसी सेना में नौकरी की तथा इस दौरान उन्होंने मानवजातीय शोध कार्य प्रारम्भ किया। बोर्दियू का पालन–पोषण एक गांव में हुआ था। बोर्दियू की पारिवारिक पृष्ठभूमि कोई उच्च स्तर की नहीं थी, इसके बावजूद भी उन्होंने समाजशास्त्र में जो नाम अर्जित किया है, वह बहुत बड़ी बात है। बोर्दियू की मृत्यु 23 जनवरी, 2002 को पेरिस में हुई थी।

6.3 पियरे बोर्दियू की शैक्षणिक पृष्ठभूमि

जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि बोर्दियू का जन्म पेरिस के एक छोटे से नगर में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पाऊ के एक माध्यमिक विद्यालय में हुई। उसके बाद उनका दाखिला पेरिस के एक प्रतिष्ठित स्कूल में कराया गया, जहां पर उन्होंने आगे की पढ़ाई की। इसके पश्चात उन्हें 'इकोले नार्मल सुप्रीयर' में दाखिला कराया गया, जहां पर उन्होंने लुईस अल्युसर के अन्तर्गत दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। इसके बाद बोर्दियू ने एक वर्ष तक (1954–55) मौलिन्स में एक हाईस्कूल (Lycee) में पढ़ाया। प्रारम्भ में उन्होंने फौज में भी काम किया, तत्पश्चात उन्हें 1955 में अल्जीरिया भेज दिया गया, यहीं पर उन्होंने अल्जीयर्स विश्वविद्यालय में सन् 1958 से लेकर सन् 1960 तक व्याख्याता एवं शोधकर्ता के रूप में अध्यापन का भी कार्य किया। यहां पर उन्होंने विशेष रूप से बर्बर–भाषी कबाइल के बीच रहते हुए नृवंशविज्ञान अनुसंधान पर काम किया। जब सन् 1964 में बोर्दियू अल्जीरिया से पेरिस आए तब उन्हें 'इकोले हेट्स' के समाजविज्ञान संस्थान में निदेशक बना दिया गया। यहां आकर पद ग्रहण करने से पहले उन्होंने पेरिस विश्वविद्यालय में सन् 1960 से 1961 एवं लिली विश्वविद्यालय में सन् 1961 से 1964 तक पढ़ाने का काम किया। निदेशक का पद ग्रहण करने के पश्चात सन् 1968 में उन्होंने शोध केन्द्र की स्थापना की। इसके बाद सन् 1975 में उन्होंने एक अंतर्विषयी पत्रिका प्रारम्भ की, जिसके माध्यम से समाजशास्त्र के स्थापित नियमों का पुनर्वलोकन किया। तत्पश्चात कॉलेज–डे–फ्रांस में सन् 1981 में उन्होंने अध्यक्ष पद का कार्य ग्रहण किया। जैसा कि हम देखने को पाते हैं कि बोर्दियू ने सैद्धांतिक विचारों को दैनिक जीवन के आनुभविक शोध से एकीकृत करने का प्रयास किया है। मानवशास्त्र तथा सांस्कृतिक अध्ययन, शिक्षा, राजनीति एवं समाज विज्ञान को दिए गए सैद्धांतिक एवं आनुभाविक योगदान बोर्दियू को शिक्षा जगत के महान विचारकों में शामिल करते हैं।

6.4 पियरे बोर्दियू का सामाजिक पुनरुत्पादन परिप्रेक्ष्य

6.4.1 सामाजिक पुनरुत्पादन का तात्पर्य

पुनरुत्पादन का शाब्दिक अर्थ है 'फिर से उत्पादन करना' अर्थात् दोबारा किसी चीज का निर्माण करना। जब समाज शब्द इसमें जुड़ जाता है तो इसे सामाजिक पुनरुत्पादन कहा जाता है। सामाजिक पुनरुत्पादन एक अवधारणा है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसीसी समाजशास्त्री पियरे बोर्दियू ने किया था। सामाजिक पुनरुत्पादन वह तंत्र है जिसके द्वारा मौजूदा सामाजिक मूल्य, प्रथाएं, रूप, मानदण्ड और साझा समझ एक पीढ़ी से दूसरी पीढी तक प्रसारित होते रहते हैं, जिससे सामाजिक अनुभव की निरंतरता बनी

रहती है। दूसरे शब्दों में प्रजनन जैसा कि समाज पर लागू होता है, वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के पहलुओं को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या कह सकते हैं कि एक समाज से दूसरे समाज में स्थानांतरित किया जाता है। पियरे बोर्दियू का कहना है कि जो सांस्कृतिक पुनरुत्पादन है वही सामाजिक पुनरुत्पादन का मूल कारण है।

6.4.2 पियरे बोर्दियू का सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत

बोर्दियू कहते हैं कि अक्सर सांस्कृतिक पुनरुत्पादन के परिणामस्वरूप ही सामाजिक पुनरुत्पादन का कार्य होता है। यह समाज के पहलुओं या वर्गों को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित करने की प्रक्रिया होती है। ऐसे बहुत से तरीके हैं जिनसे ऐसा प्रजनन या पुनरुत्पादन हो सकता है। अक्सर सामाजिक वर्ग या लोगों के समूह अपने लाभ को बनाए रखने के लिए मौजूदा सामाजिक संरचना को दोबारा उत्पन्न करने के लिए कार्य करते हैं। इसी तरह से आधुनिक समाज में स्कूली शिक्षा की प्रक्रियाएं सामाजिक पुनरुत्पादन के मुख्य तंत्रों में से एक हैं और केवल औपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में सिखाई गई बातों के माध्यम से संचालित नहीं होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि लोग अपने साथ कुछ सांस्कृतिक मानदण्डों और परम्पराओं को लेकर विभिन्न क्षेत्रों से आते है। ये संस्कृतियां व्यवहार के उन पहलुओं को प्रसारित करती हैं जो व्यक्ति घर से बाहर रहते हुए अनौपचारिक रूप से सीखता है। व्यक्तियों के मध्य यह अंतःक्रिया जिसके परिणामस्वरूप स्वीकृत सांस्कृतिक मानदण्डों, मूल्यों और सूचनाओं का लेन–देन होता है, यह समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से पूरा किया जाता है।

सामाजिक पुनरुत्पादन वह प्रक्रिया है जिसमें प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए केवल एक कारक ही नहीं उत्तरदायी होता है, अपितु इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण कारक सांस्कृतिक पुनरुत्पादन है। सामाजिक पुनरुत्पादन को बनाए रखने के लिए जिस विधि के माध्यम से सांस्कृतिक पुनरुत्पादन को कायम रखा जाता है वह समाजीकरण प्रतिनिधियों के सापेक्ष स्थान, जागरूकता और सामाजिक या सांस्कृतिक मानदण्डों को पुनः उत्पन्न करने के इरादे से भिन्न होता है। संस्कृतिकरण को आंशिक रूप से सचेत और आंशिक रूप से अचेत सीखने के अनुभव के रूप में वर्णित किया जा सकता है, जब पुरानी पीढ़ी युवा पीढ़ी को सोचने और समाज में व्यवहार करने के पारम्परिक तरीकों को अपनाने के लिए दबाव बनाती है और प्रेरित करती है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया कई मायनों में पिछली पीढ़ियों के मानदण्डों और परम्पराओं की नकल करता है। संस्कृतिकरण के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली संस्कृतियों के बीच समानता की डिग्री भिन्न हो सकती है। इस अवधारणा को प्रत्येक अगली पीढ़ी की सांस्कृतिक मानदण्डों का पालन करने की प्रवृत्ति से प्रदर्शित किया जा सकता है।

सांस्कृतिक पुनरुत्पादन की अवधारण सर्वप्रथम 1970 में फ्रांसीसी समाजशास्त्री और सांस्कृतिक सिद्धांतकार पियरे बौर्दियू द्वारा अपनाई गई थी। बोर्दियू का शुरुआती काम आधुनिक समाज में शिक्षा से सम्बंधित था। बोर्दियू ये मानते थे कि शिक्षा प्रणाली का प्रयोग केवल प्रभुत्व वर्ग की संस्कृति को पुनः उत्पन्न करने के लिए किया जाता था, जिससे ये प्रभुत्व वर्ग सत्ता पर कब्जा बनाए रख सके और अपनी शक्तियों को उसी रूप में जारी रख सके। बोर्दियू का सिद्धांत एडमण्ड हुसरल, जॉर्ज कैंगुइलहेम, मौरिस मर्लेउ–पोंटी, कार्ल मार्क्स, लुडविग विट्गेंस्टाइन, मैक्स वेबर, नॉर्बर्ट एलियास और इमाइल दुर्खीम के अनुमानों पर आधारित है। समाजीकरण का अध्ययन करना एवं कैसे कुछ प्रमुख संस्कृति और कुछ मानदण्डों और परम्पराओं ने कई सामाजिक सम्बंधों को प्रभावित किया, बोर्दियू के ऐसे विचार विशेष रूप से लुइस अल्थुसर की वैचारिक राज्य तंत्र की अवधारण के समान थे, जो कि लगभग उसी समय के आसपास उभरे थे।

बोर्दियू के समाजशास्त्रीय कार्य में सामाजिक पदानुक्रमों के पुनरुत्पादन के तंत्र के विश्लेषण का बोलबाला था। मार्क्स द्वारा दिए गए विश्लेषणों के विरोध में बोर्दियू ने आर्थिक कारकों को दी गई प्रधानता की आलोचना की और इस बात पर जोर दिया कि सामाजिक अभिनेताओं की अपनी सांस्कृतिक प्रस्तुतियों और प्रतीकात्मक प्रणालियों को सक्रिय रूप से लागू करने और संलग्न करने की क्षमता, वर्चस्व की सामाजिक संरचनाओं के पुनरुत्पादन में एक आवश्यक भूमिका निभाती है। बोर्दियू के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में एक आवश्यक भूमिका निभाते हुए एक प्रतीकात्मक हिंसा कहा जाता है। यह सुनिश्चित करने की क्षमता कि सामाजिक व्यवस्था की भविष्यवाणी को नजरंदाज कर दिया जाए या प्राकृतिक रूप में अलग पहचाना जाए–और इस प्रकार सामाजिक संरचनाओं की वैधता सुनिश्चित की जाए।

बोर्दियू की सांस्कृतिक पुनरुत्पादन के समबंध में दी गई मुख्य धारणाओं में एक को जीन–क्लाउड पासेरोन के साथ लिखी गई पुस्तक 'कल्चरल रिप्रोडक्शन एण्ड सोशल रिप्रोडक्शन' (1970) में प्रस्तुत किया गया था। इसमें बोर्दियू मुख्य रूप से सांस्कृतिक पुनरुपादन के कारण संरचनात्मक पुनरुत्पादन की हानियों और असमानताओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं। बोर्दियू का यह मानना था कि असमानताओं को शिक्षा प्रणाली और अन्य सामाजिक संस्थानों के माध्यम से पुनः चक्रित किया जाता है। बोर्दियू यह मानते थे कि पश्चिम के समृद्ध और सम्पन्न समाज सांस्कृतिक राजधानी बन रहे हैं। उच्च सामाजिक वर्ग, बुर्जुआ संस्कृति से मेल–जोल और शैक्षिक साख ने किसी के जीवन की संभावनाओं को निर्धारित किया। यह उच्च सामाजिक वर्गों के प्रति पक्षपाती था और सामाजिक पदानुक्रमों के संरक्षण में सहायता करता था। इस प्रणाली ने व्यक्तिगत प्रतिभा को और शैक्षणिक योग्यता को छुपाया और नजरंदाज किया। 'रिप्रोडक्शन इन एजुकेशन, कल्चर एण्ड सोसायटी' पुस्तक के साथ–साथ 'द इनहेरिटर्स' (1964) पुस्तक में बोर्दियू ने अपने अधिकांश

सिद्धांतों का प्रदर्शन किया। इन दोनों पुस्तकों ने पियरे बोर्दियू को 'प्रजनन सिद्धांत' के जनक के रूप में विख्यात किया।

6.5 पियरे बोर्दियू द्वारा समाजशास्त्र में किए गए कुछ प्रमुख कार्य

बोर्दियू का काम पारम्परिक मानवविज्ञान और समाजशास्त्र से प्रभावित है। इसकी झलक इनके द्वारा किए गए कार्यों में देखने को आसानी से मिलती है। मैक्स वेबर से प्रभावित होकर उन्होंने सामाजिक जीवन में प्रतीकात्मक प्रणालियों के प्रभुत्व के साथ–साथ सामाजिक आदेशों के विचार पर जोर दिया, जिसे अंततः बोर्दियू ने धर्म के समाजशास्त्र से, 'क्षेत्रों के सिद्धांत' में परिवर्तित कर दिया। मार्क्स से उन्होंने सामाजिक सम्बंधों के समुच्चय के रूप में समाज के विषय में अपनी समझ प्राप्त की कि सामाजिक दुनिया में जो मौजूद हैं वे सम्बंध हैं। एजेण्टों के बीच बातचीत या व्यक्तियों के बीच अंतः विषय सम्बंध नहीं कहलाते हैं, अपितु वस्तुनिष्ठ सम्बंध जो व्यक्तिगत चेतना और इच्छा से स्वतंत्र रूप से मौजूद हैं वे सम्बंध कहलाते हैं। दुर्खीम, क्लाउड लेवी स्ट्रास और मार्सल मॉस के माध्यम से बोर्दियू को प्रतीकात्मक संरचनाओं और वर्गीकरण के रूपों के विश्लेषण के आधार पर खुद को दोबारा पेश करने की सामाजिक संरचनाओं की प्रवृत्ति की एक निश्चित संरचनावादी व्याख्या विरासत में मिली। हालांकि सामाजिक संरचनाओं, प्रतीकात्मक आदेशों के अवतार के माध्यम से सामाजिक एजेण्टों की भूमिका तय करने की अपनी समझ में वो दुर्खीम से काफी हद तक अलग हो गए। बोर्दियू ने इस बात पर भी जोर दिया कि सामाजिक संरचनाओं का पुनरुत्पादन प्रकार्यवादी तर्क के अनुसार संचालित नहीं होता है।

शिक्षा सम्बंधी विचारों में बोर्दियू ने संस्कृति को महत्व देते हुए कहा है कि शिक्षा प्रमुख वर्ग की संस्कृति को स्थापित करने का कार्य करती है। प्रमुख सत्ता पक्ष के लोग अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ बताते हुए इसे शिक्षण व्यवस्था का आधार प्रमाणित करते हैं। इस पर बोर्दियू ने कहा है कि विभिन्न वर्गों के विद्यार्थियों की शिक्षा में असमानता उनकी सांस्कृतिक पूंजी में असमानता के कारण होती है। अतः यहां एक वर्ग भेद उत्पन्न हो जाता है। इस प्रक्रिया में मध्यम वर्ग के परिणाम अच्छे होते हैं। बोर्दियू का कहना था कि उच्च वर्गों के बालकों की मानसिक स्थिति बेहतर होती है तथा वे अध्ययन में बेहतर होते हैं। साथ ही अर्थ, व्याकरण, ध्वनि, सामग्री प्रस्तुतीकरण आदि को वे निकटता से अनुभव करते हैं। इस प्रकार निम्न वर्ग प्रारंभ से ही नुकसान की स्थिति में रहता है। बोर्दियू के विचार में सत्ता पक्ष का वर्चस्व शिक्षा जगत में अहितकारी है।

बोर्दियू के विचारों की जड़ें चार दशकों तक फ्रांस में किए गए शोध कार्यों में जमी हुई थीं। उन्होंने सामाजिक राजनीति के सिद्धांत को प्रतीकात्मक पूंजी के लिए लोगों के संघर्ष को स्पष्ट करने के लिए

प्रयोग किया। उन्होंने शिक्षा व्यवस्था में स्वायत्ता तथा वर्ग सम्बंधों पर इसकी निर्भरता के बीच सम्बंधों को खोजा। मार्क्स की भांति बोर्दियू का भी यह मानना था कि शासक वर्ग और कामगार वर्ग के मध्य विवाद और संघर्ष के सम्बंध होते हैं। वो मानते थे कि दोनों में यह अंतर उनकी पूंजी में असमानता के कारण है। बोर्दियू के लिए पूंजी समूह व व्यक्ति के संयुक्त ज्ञान, विश्वास, मूल्यों और गुणों के आधार पर समाज में उपयुक्त होने की क्षमता में निहित है। शिक्षा की भूमिका इस कारण महत्वपूर्ण हो जाती है कि सुविधा सम्पन्न और संभ्रांत लोग इससे न केवल शिक्षित होने की प्रमाणिकता प्राप्त करते हैं अपितु इसके माध्यम से एक विचारधारा का प्रसार करते हैं, जिससे समाज के नियम निर्मित होते हैं और उसमें से अधिकांश उनके अपने लिए लाभप्रद होते हैं। बोर्दियू का यह मानना था कि बुद्धिजीवी वर्ग अपने ज्ञान का नियोजित प्रसार करते हैं और लोगों को समाज के नियमों के अंतर्गत पहचान के लिए, लाभ के लिए, न्याय के लिए प्रतिस्पर्धा करने देते हैं। बोर्दियू ने समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी अवधारणाओं ने कई विश्लेषणों और आगे के सिद्धांत का आधार बनाया है। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्न हैं–

(i) पूँजी और सामाजिक वर्ग

(ii) आदत

(iii) क्षेत्र और समाज

(iv) प्रतीकात्मक पूँजी (प्रतीकात्मक हिंसा)

(i) पूँजी और सामाजिक वर्ग– अर्थशास्त्र में पूँजी का तात्पर्य वित्तीय सम्पत्ति, वस्तुओं और परिसम्पत्तियों से है, परन्तु समाजशास्त्र में यह मानना है कि एक व्यक्ति के पास समाज में पूँजी के विभिन्न रूप हो सकते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि बोर्दियू मार्क्स के विचारों से प्रभावित थे। इसलिए बोर्दियू ने सांस्कृतिक और सामाजिक पूँजी की अवधारणाओं का निर्माण करते हुए, संस्कृति और समाजीकरण के साथ–साथ वित्त के दायरे को जानने के लिए 'वर्ग' के विचार का विस्तार किया। सांस्कृतिक पूँजी उस ज्ञान, कौशल, मूल्यों, स्वाद और व्वयहार को प्रदर्शित करता है, जिन्हें जीवन में सफल होने के लिए वांछनीय या आवश्यक माना जाता है। सामाजिक पूँजी से तात्पर्य उन सामाजिक तन्त्रों या सम्पर्कों से है, जो उन्नति और सफलता के अवसर पैदा कर सकते हैं। बोर्दियू का यह मानना था कि समान व्यवहार योग्यताएं आदि समाज में किसी भी स्थिति को परिभाषित करती है और सामाजिक वर्ग की तरह साझा पहचान की भावना पैदा करती हैं। इसके अलावा उन्होंने यह भी तर्क दिया कि सामाजिक और सांस्कृतिक पूंजी, वर्गों के मध्य असमानता के प्रमुख स्रोत हैं। उनका यह मानना था कि ऐसा इसलिए है क्योंकि श्रमिक

वर्ग की तुलना में मध्यम वर्ग की पहुंच सामाजिक और सांस्कृतिक पूंजी तक अधिक है और वह समाज में प्रभुत्व रखता है। बोर्दियू ने इसे शिक्षा पर भी लागू किया और बताया कि कैसे स्कूल और समितियां मध्यवर्गीय सांस्कृतिक मानदण्डों और उनके हितों में काम करती हैं। इसका सीधा–सीधा अर्थ यह हुआ कि मध्यम वर्ग के सामाजिक लाभ को बरकरार रखते हुए शैक्षणिक रूप से सफल होने की अधिक संभावना है, जबकि श्रमिक वर्ग के छात्रों के सफलता के रास्ते में बहुत सी कठिनाइयां हैं, जो उन्हें पीछे ढकेलती हैं।

(ii) आदत– पियरे बोर्दियू ने आदत शब्द को सांस्कृतिक पूँजी के समीप पहलू को संदर्भित करने के लिए गढ़ा है। विशेष रूप से ये वे आदतें, स्वभाव और कौशल होते हैं जो एक व्यक्ति अपने जीवन में जमा करता है। साधारण सी भाषा में कहें तो आदत वह चीज है जब कोई व्यक्ति किसी स्थिति पर कैसे प्रतिक्रिया प्रकट करता है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसने पहले चीजों पर किस प्रकार की प्रतिक्रिया दी है। सही अर्थों में हमारी आदत हमें विभिन्न परिस्थितियों में बर्ताव करने में मदद करती है। बोर्दियू के अनुसार आदत में कला, भोजन और कपड़ों जैसी सांस्कृतिक वस्तुओं के लिए हमारी रुचियां और प्राथमिकताएं भी शामिल हैं, जो कि हमारी सामाजिक स्थिति से आकार लेती हैं। उन्होंने अपनी कृति डिस्टिंक्शन में यह बताया है कि रुचि/स्वाद जन्मजात नहीं अपितु सांस्कृतिक रूप से विरासत में मिलती है।

(iii) क्षेत्र और समाज– बोर्दियू यह मानते थे कि समाज को 'क्षेत्र' नामक कई वर्गों में बांटा गया था, जिसमें प्रत्येक के अपने पूंजी के रूप, कानून, मानदण्ड और नियम थे। कानून, धर्म, शिक्षा, खेलकूद, कला आदि के अलग–अलग क्षेत्र हैं और सभी के अलग–अलग काम करने के तरीके हैं। कभी–कभी इन क्षेत्रों का विलय हो जाता है। अब जैसे उदाहरण के तौर पर हम देखते हैं कि कला और शिक्षा का विलय, विशिष्ट कला महाविद्यालयों में हो जाता है। बोर्दियू यह भी कहते हैं कि ये क्षेत्र अभी भी काफी स्वायत्त है और इसी प्रकार से रहना भी चाहिए। उन्होंने यह भी बताया कि क्षेत्रों में अलग–अलग पदानुक्रम और शक्ति संघर्ष होते हैं, जिनमें लोग आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं। लोग अपने पूंजी के स्वरूप को बढ़ाने के लिए प्रतिस्पर्धा करते रहते हैं उस वक्त यह मायने नहीं रखता है कि क्षेत्र की प्रकृति कैसी है। उदाहरण के लिए कला क्षेत्र की नई पीढ़ी अपने पुराने पीढ़ी के कलाकारों के कामों को नष्ट करके अपना नाम कमाने का प्रयास करती है और बाद में आगे चलकर स्वयं भी इसका शिकार बनती है।

(iv) प्रतीकात्मक पूँजी (प्रतीकात्मक हिंसा)– सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पूंजी के साथ–साथ बोर्दियू ने जिस चौथी पूंजी की बात की है, वह प्रतीकात्मक पूंजी है। प्रतीकात्मक पूंजी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति से उत्पन्न होती है। प्रतीकात्मक पूंजी में वो संसाधन शामिल होते हैं जो प्रतिष्ठा, सम्मान आदि से

आते हैं। बोर्दियू ने कहा है कि प्रतीकात्मक पूंजी समाज में शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसे सामाजिक दायित्वों को पूरा करने के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है, जो कि बहुत और सम्मान के साथ आते हैं। जब कोई उच्च स्तर की प्रतीकात्मक पूंजी वाला व्यक्ति इसका उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ करता है जिसके पास प्रतीकात्मक पूंजी कम है तो वह व्यक्ति प्रतीकात्मक हिंसा को जन्म दे रहा होता है। बहुत से मायनों में यह प्रतीकात्मक हिंसा शारीरिक हिंसा की अपेक्षा अधिक हानिकारक होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इसमें शक्तिशाली व्यक्ति की इच्छा को शक्तिविहीन व्यक्ति पर थोपा जाता है और समाजिक व्यवस्था एवं समाज में जो स्वीकार्य है उसे सुदृढ़ करने का कार्य किया जाता है।

6.6 पियरे बोर्दियू की कुछ मुख्य बातें एवं पुस्तकें

पियरे बोर्दियू एक फ्रांसीसी समाजशास्त्री और सार्वजनिक बुद्धिजीवी थे, जिनकी अवधारणाओं ने सामान्य समाजशास्त्रीय सिद्धांत, शिक्षा के समाजशास्त्र और स्वाद, वर्ग और संस्कृति के समाजशास्त्र को आकार देने में मदद की।

- पियरे बोर्दियू ने समाजिक और सांस्कृतिक पूंजी की धारणाओं का निर्माण करते हुए संस्कृति और समाजीकरण के साथ–साथ वित्त के दायरे को कवर करने के लिए 'वर्ग' के विचार का विस्तार किया।
- पियरे बोर्दियू ने समाज, संस्कृति, पूंजी, आपसी सम्बंधों का गहन अध्ययन करते हुए 'सामाजिक पुनरुत्थान' सिद्धांत को प्रतिपादित किया। बोर्दियू द्वारा प्रतिपादित शिक्षा का यह परिप्रेक्ष्य उन्हें महान समाजशास्त्रियों की श्रेणी में शामिल करता है।
- पियरे बोर्दियू ने सांस्कृतिक पूंजी के सन्निहित पहलू को संदर्भित करने के लिए 'आदत' शब्द गढ़ा। ये वो चीजें होती हैं जिन्हें विशेष तरह से व्यक्ति कौशल और स्वभाव के रूप में अपने जीवन में जमा करता है।
- पियरे बोर्दियू यह मानते थे कि समाज को 'फील्ड' नामक कई वर्गों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक विभाजित वर्ग के अपने नियम, मानदण्ड और पूंजी के रूप थे।
- पियरे बोर्दियू ने जिन चार प्रकार की पूंजी की संकल्पना प्रस्तुत की थी उसमें जिस चौथी प्रकार की पूंजी की संकल्पना उन्होंने दी थी वह 'प्रतीकात्मक' पूंजी हैं समाज में जब हम देखते हैं कोई उच्च स्तर की प्रतीकात्मक पूंजी वाला व्यक्ति इसका उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध करता है जो निम्न स्तर की प्रतीकात्मक पूंजी वाला होता है तो वह व्यक्ति 'प्रतीकात्मक हिंसा' कर रहा है।

पियरे बेर्दियू की पुस्तकें–

- द इनहेरिटर्स (1964)
- रिप्रोडक्शन इन एजूकेशन (1970)
- कल्चर एण्ड सोसायटी (1970)
- डिस्टिंक्शनः ए सोशल क्रिटिक ऑफ द जजमेण्ट ऑफ टेस्ट (1979)
- द लॉजिक ऑफ प्रैक्टिस (1980)
- होमो एकेडमिक (1984)
- द स्टेट नोबिलिटी (1989)
- लैंग्वेज एण्ड सिम्बोलिक पावर (1990)
- द रूल्स ऑफ आर्ट (1992)
- कल्चर रिप्रोडक्शन एवं सोशल रिप्रोडक्शन (1973)

6.7 सारांश

बोर्दियू ने सामाजिक, सांस्कृतिक पूंजी जैसी अवधारणाओं को जन्म दिया। बोर्दियू की दृष्टि में समाज विज्ञान, ज्ञान का एक उद्यम है और समाजशास्त्र जैसा समाज विज्ञान बुद्धिसंगतता के माध्यम से सामाजिक यथार्थता को समझ सकता है। बोर्दियू का कहना है कि सतह में दिखने वाली घटनाओं में अंदर एक निश्चित संरचना में बनी होती है। इस संरचना के नियमों की एक कड़ी के रूप में समझा जा सकता है। ये नियम ही विभिन्न प्रकार की आनुभाविक स्थितियों का विश्लेषण करने में सहायक होते हैं। इन नियमों की संरचना को ही सांस्कृतिक संरचनावाद कहा जाता है। दूसरे शब्दों में जो भी आचरण एवं व्यवहार किया जाता है, इसके पीछे संस्कृति का हाथ होता है और यह संस्कृति समाज में हस्तांतरित होती रहती है। यह हस्तांतरण ही सामाजिक पुनरुत्पादन का कारण बनती है। बोर्दियू का समाजशास्त्र में विशेष योगदान सामाजिक वर्ग का विश्लेषण रहा है, उन्होंने सामाजिक वर्ग को सांस्कृतिक स्वरूप से जोड़कर देखा है।

6.8 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–1 बोर्दियू की सामाजिक पुनरुत्पादन परिप्रेक्ष्य की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–2 समाजशास्त्र में बोर्दियू के योगदान की चर्चा कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न–1 बोर्दियू का जन्म कहां हुआ था?

(अ) न्यूयार्क (ब) जर्मनी (स) इटली (द) देंग्यू

प्रश्न–2 बोर्दियू ने किस देश की सेना में नौकरी की थी?

(अ) अमेरिका (ब) जर्मनी (स) फ्रांस (द) रूस

प्रश्न–3 बोर्दियू की पुस्तक 'द इनहेरिटर्स' किस सन् में आई ?

(अ) 1963 (ब) 1964 (स) 1965 (द) 1966

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ

1. (द)
2. (स)
3. (ब)

6.10 संदर्भ सूची

- ग्रेनफेल, माइकल; पियरे बोर्दियू: की कान्सेप्टस; राउटलेज 2012।
- स्वार्टज्, डेविड एल, जोसवर्ग वेरा एल; आफटर बोर्दियू; स्प्रिगर वेरलाग न्यूयॉर्क 2006।
- राबिन्स, डेरेक; बोर्दियू और कल्चर; सेज पब्लिकेशंस, लंदन 1999।
- बोर्दियू, पियरे; रिप्रोडक्शन इन एजूकेशन, सोसायटी एण्ड कल्चर; सेज पब्लिकेशंस, लंदन 1990।
- नायर, प्रमोद कुमार; एन इन्ट्रोडक्शन टू कल्चरल स्टडीज; वाइवा बुक्स, नई दिल्ली 2015।

इकाई-7 नारीवादी परिप्रेक्ष्य ब्रायन स्केजेस

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.3 नारीवादी परिप्रेक्ष्य की परिभाषा

7.4 नारीवादी अवधारणा

7.5 माहिलाओ का ऐतिहासिक विकास

7.6 भारत में नारीवाद

- 7.6.1 उदारवादी नारीवाद.
- 7.6.2 कट्टरपंथी नारीवाद
- 7.6.3 मार्क्सवादी और समाजवादी नारीवाद
- 7.6.4 सांस्कृतिक नारीवाद
- 7.6.5 पारिस्थितिकी–नारीवाद
- 7.6.6 चुनौतियाँ
- 7.6.7 संभावनाएँ

7.7 सारांश

7.8 बोध प्रश्न

7.9 सन्दर्भ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई मे नारीवादी परिप्रेक्ष्य से संबन्धित विचारो की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. नारीवादी अवधारणा से संबन्धित विचारो की जानकारी प्राप्त करेंगे।
2. माहिलाओं के ऐतिहासिक विकास को जान सकेंगे।
3. भारत में नारीवाद की अवधारणा की जानकारी प्राप्त करेंगे।
4. भारत में नारीवाद के विभिन्न बिन्दुओ की जानकारी प्राप्त करेगे।
5. नारीवादी परिप्रेक्ष्य के संबन्ध में विभिन्न समाजशास्त्रियों के विचारो को आप समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

महिलाओं के हित समान होने की चाहत सैद्धांतिक रूप से समस्याग्रस्त है और नारीवादियों के लिए राजनीतिक रूप से अवांछनीय है। हितों को व्यक्तिपरक, आकस्मिक और संदर्भ के प्रति संवेदनशील के रूप में पुनर्परिभाषित करने के प्रयास उन लोगों के लिए असंतोषजनक हैं जो महिलाओं के प्रतिनिधित्व को उनके उत्पीड़न, शोषण और भेदभाव के तथ्य से जोड़ना चाहते हैं। सौभाग्य से, हमें महिलाओं के प्रतिनिधित्व के महत्व के बारे में मजबूत दावे करने के लिए साझा हितों की आवश्यकता नहीं है। न ही हमें यह समझाने के लिए ऐसी अवधारणा की आवश्यकता है कि महिलाएं महत्वपूर्ण संस्थागत बाधाओं और सामाजिक मतभेदों के बावजूद एक साथ क्यों काम करती हैं।

वैश्विक और स्थानीय सामाजिक समूहों के आपस में जुड़ी हुयी संरचनाएँ महिलाओं को एक सामाजिक सामूहिकता के रूप में परिभाषित करती हैं। विविध संगठनात्मक, सामाजिक और राष्ट्रीय संदर्भों में महिलाएँ इस जटिल संरचना को बदलने के लिए संगठित होती हैं, इस प्रक्रिया में एकजुटता और साझा पहचान के संबंध बनाती हैं। लेकिन इसे साझा हितों तक सीमित नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, महिलाओं में जो चीजें समान हैं, उन पर ध्यान केंद्रित करने से उन मुद्दों पर जोर नहीं पड़ता है जो मुख्य रूप से महिलाओं के हाशिए पर पड़े समूहों और जो समूह या संदर्भ विशिष्ट हैं लेकिन लैंगिक न्याय प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। सौभाग्य से, नारीवादी सिद्धांतकारों ने राजनीतिक प्रतिनिधित्व और लामबंदी के लिए आधारों की पहचान की है जो सामाजिक समूह राजनीति के अधिक उपयोगी विवरण प्रदान करते हैं।

7.3 नारीवादी परिप्रेक्ष्य की परिभाषाएँ

पुरुषों और महिलाओं की पूर्ण आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समानता में विश्वास आमतौर पर पुरुष–प्रधान अतीत को बदलने और एक समतावादी भविष्य बनाने के लिए एक आधुनिक आंदोलन के रूप में देखा जाता है। हालाँकि, इस ओर अन्य महाद्वीपों पर, नारीवाद इतिहास और स्मृति भी है। नारीवाद महिलाओं को महिलाओं के रूप में अधीन करने के राजनीतिक विरोध को व्यक्त करता है,चाहे वह अधीनता कानून द्वारा निर्धारित हो,सामाजिक परंपरा द्वारा लागू की गई हो, या व्यक्तिगत रूप से पुरुषों और महिलाओं द्वारा थोपी गई हो। नारीवाद लिंग शक्ति के मौजूदा असमान संबंधों के लिए विकल्प भी प्रदान करता है, और इन विकल्पों ने नारीवादी आंदोलनों के लिए एजेंडा तैयार किया है।

व्यक्तिवादी या नारीवादी कहते हैं कि नारीवादी नारा महिला का अधिकार हर उस शांतिपूर्ण विकल्प तक विस्तारित होना चाहिए जो एक महिला चुन सकती है। फ़ेमिनिस्ट मानते हैं कि स्वतंत्रता और विविधता महिलाओं को लाभ पहुँचाती है, चाहे कोई विशेष महिला जो विकल्प चुनती है वह राजनीतिक रूप से सही हो या नहीं वे मातृत्व से लेकर पोर्न तक सभी यौन विकल्पों का सम्मान करते हैं। स्वतंत्रता की कीमत के रूप में, फ़ेमिनिस्ट अपने जीवन के लिए व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी स्वीकार करते हैं। वे सरकार से विशेषाधिकारों की अपेक्षा नहीं करते हैं, जितना कि वे सरकारी दुरुपयोग को स्वीकार करते हैं। फ़ेमिनिस्ट कानूनी समानता चाहते हैं, और वे पुरुषों को भी वही सम्मान देते हैं। संक्षेप में, फ़ेमिनिज़्म स्वतंत्रता, विकल्प और व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी की माँग करता है।

7.4 नारीवादी अवधारणा

नारीवादी अवधारणा का आरंभ इस विश्वास के साथ होता है कि स्त्रियां पुरुषों की तुलना में अलाभ और हीनता की स्थिति में हैं। नारीवादी विचारधारा मुख्य रूप से स्त्री–पुरुष भेदभाव से जुड़ी है तथा यह स्त्रियों की भूमिका और अधिकारों से संबंधित है। यह अवधारणा स्त्रियों की पराधीनता और उनके प्रति होने वाले अन्याय पर ध्यान केंद्रित करते हुए इनके प्रतिकार के उपायों पर विचार करती है। नारीवाद स्त्री–पुरुष भेदभाव की पड़ताल के लिए मुख्य रूप से 'सेक्स' और 'जेंडर' को आधार बनाता है। नारीवादियों का मानना है कि सेक्स एक 'जीव वैज्ञानिक तथ्य' है तथा जेंडर एक 'समाज वैज्ञानिक तथ्य'। नारीवादियों का मानना है कि प्रकृति ने स्त्री और पुरुष की शारीरिक बनावट में जो अंतर स्थापित किया है उसी को सामाजिक स्थिति का आधार बना लिया गया जो कि तर्कसंगत नहीं है।

प्राचीन काल से ही स्त्रियों को सामाजिक जीवन में उपयुक्त मान्यता नहीं दी गई और उन्हें हीन स्थिति में रखा गया। नारीवादी विचारक जैविक–निर्धारणवाद (Biological determinism) के विचार को खारिज करते हुए बताते हैं कि पुरुष और स्त्री की भिन्न छवि उनके जीव वैज्ञानिक अंतर पर आधारित नहीं है बल्कि यह हमारी संस्कृति की देन है। यह अधीनता सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं और संस्थाओं की उपज है जो महिलाओं की भौतिक और विचारधारात्मक अधीनता यानी जेंडर के प्रभुत्व को सुनिश्चित करती है। ये मान्यताएं सामाजिक जीवन में स्त्री के संपूर्ण जीवन पर पुरुष के नियंत्रण को बढ़ावा देती हैं जिससे पितृसत्ता स्थापित होती है और यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही स्त्रियों के शोषण का कारण है। इस प्रकार से नारीवादियों का मानना है कि स्त्रियों की हीन स्थिति का कारण कृत्रिम है और यह समाज द्वारा निर्मित है जिसे चुनौती दी जानी चाहिए।

फ्रेडरिक एंगेल्स का मानना है कि स्त्रियों का दमन परिवार की संस्था से आरंभ होता है क्योंकि बुर्जुआ परिवार की संरचना पितृसत्तात्मक होती है। फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'द ओरिजिन ऑफ द फैमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एंड स्टेट' (1884) में यह तर्क दिया कि समाजवाद के आगमन से निजी संपत्ति का अंत हो जाएगा जिससे स्त्रियों को गृह कार्य के भार से मुक्ति मिल जाएगी और समानता स्थापित होगी। शीला रोबाथम प्रमुख समाजवादी नारीवादी विचारक हैं। इन्होंने मुख्य रूप से स्त्रियों के इतिहास का पता लगाने की कोशिश की। इन्होंने अपनी चर्चित कृति 'विमेन रेजिस्टेंस एंड रिवॉल्यूशन' के अंतर्गत बताया कि स्त्रियों के अतीत की जानकारी से हमें उनके भविष्य के लिए दिशा दृष्टि मिल सकती है। शीला रोबाथम का मानना था कि नारी मुक्ति का संघर्ष वस्तुतः पूंजीवाद विरोधी संघर्ष का एक हिस्सा है।

7.5 महिलाओं का ऐतिहासिक विकास

यदि हम ऐतिहासिक रूप से नारीवादी मुद्दों की बात करें तो इनकी मांग है कि स्त्रियों के अधिकारों को मानव अधिकारों की सामान्य श्रेणी के रूप में मान्यता दी जाए और संपूर्ण सामाजिक जीवन के संदर्भ में स्त्री–पुरुष की समानता स्वीकार की जाए। महिला आंदोलन नारीवाद के सैद्धांतिक पक्षों का व्यावहारिक प्रस्तुतीकरण है। प्राचीन या मध्यकाल में स्त्रियों की हीनतम स्थिति के विरुद्ध महिलाओं द्वारा किसी आंदोलन का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है। एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में नारीवाद 20वीं शताब्दी की देन है। महिला आंदोलन और उससे जुड़ा स्त्री मुक्ति का प्रश्न भी एक आधुनिक परिघटना है। संगठित नारीवादी आंदोलन की शुरुआत फ्रांसीसी क्रांति के दौरान हुई जब स्त्रियों द्वारा समस्त राजनीतिक एवं सार्वजनिक कार्यवाहियों में खुल कर हिस्सा लिया गया। इसके परिणामस्वरूप स्त्रियों की कानूनी स्थिति में कई महत्त्वपूर्ण बदलाव लाए गए जैसे– 1791 के कानून द्वारा स्त्री शिक्षा का प्रावधान, 1792 में स्त्रियों को

नागरिक अधिकार प्रदान किये गए तथा 1794 के कानून द्वारा तलाक की प्रक्रिया को सरलीकृत किया गया। अमेरिका में 1840 के दशक में एक लोकप्रिय सेनेका फॉल्स कन्वेंशन हुआ जिससे अमेरिका की स्त्रियों के अधिकारों के आंदोलन की शुरुआत मानी जाती है। इसी प्रकार 1869 में स्त्रियों को वोट देने के अधिकार के एक राष्ट्रीय एसोसिएशन की स्थापना हुई। ऐसे संगठन धीरे–धीरे यूरोप में भी बनने लगे। सभी विकसित देशों से यह मांग उठने लगी कि स्त्रियों को वोट का अधिकार मिलना चाहिए। इसमें पहली सफलता 1893 में न्यूजीलैंड में मिली। अमेरिका में 1920 में स्त्रियों को मतदान का अवसर मिला। 1970 के दशक में नारीवाद ने अपने आपको एक विचारधारा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया और 1990 के दशक में यह पूर्ण रूप से एक विचारधारा के रूप में स्थापित हुई। नारीवाद के विचार को 'न्यूयॉर्क रेड स्टॉकिंग्स घोषणा पत्र,1969' के द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति मिली। इसमें उल्लिखित किया गया कि, "स्त्रियाँ एक उत्पीड़ित वर्ग हैं। स्त्रियों का उत्पीड़न सर्वव्यापक है जो स्त्रियों के जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है।" 21वीं शताब्दी के आरंभ में इस विचारधारा में कई प्रभावशाली परिवर्तन हुए। आज नारीवाद एक बहुआयामी और प्रभावकारी विचारधारा है जिसने न सिर्फ अकादमिक जगत में बल्कि व्यवहारिक रुप से सामाजिक परिवर्तन का भी कार्य किया है।

- **नारीवादी की मुख्य धाराएँ–** नारीवादी आंदोलन के अंतर्गत अनेक प्रकार के विचार और कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए हैं। स्त्रियों की असमानता, दमन और अधीनता के कारणों, प्रकारों और समाधानों के बारे में नारीवादियों की अलग–अलग राय है। इसी कारण इसकी अलग–अलग धाराएँ हैं। मुख्य रूप से नारीवाद को तीन धाराओं में बाँटकर देखा जा सकता है– उदारवादी नारीवाद, आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद एवं समाजवादी नारीवाद

- **उदारवादी नारीवाद–** उदार नारीवाद, नारीवाद से जुड़ी आरंभिक विचारधारा है जो उदारवाद से जुड़ी मान्यताओं के आधार पर स्त्रियों के अधिकारों की वकालत करती है। यह विचारधारा क्रांति के विपरीत क्रमिक और कानूनी सुधार का समर्थन करती है। इससे जुड़े विचार सार्वजनिक क्षेत्र में समानता का समर्थन करते हैं। एक प्रकार से यह सुधारवादी आंदोलन है। मेरी वोल्स्टनक्राफ्ट, जे. एस. मिल, बेट्टी फ्रीडन, कैरोल पेटमैन प्रमुख उदारवादी नारीवादी विचारक हैं। 18वीं शताब्दी के अंतिम दशक में मेरी वोल्स्टनक्राफ्ट ने अपनी चर्चित कृति 'विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वीमेन' (1792) में सामाजिक ढाँचे की आलोचना करते हुए कहा कि स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया है और वे सार्वजनिक जीवन में भी अनुपस्थित हैं। अतः स्त्रियों को विवेकशील प्राणी मानते हुए स्त्री–पुरुष में बुनियादी समानता स्थापित करने की दिशा में प्रयास करना चाहिये। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जॉन स्टूअर्ट मिल ने अपनी रचना 'सब्जेक्शन ऑफ वीमेन' (1869) के अंतर्गत भी स्त्री

अधिकारों का समर्थन किया। मिल ने कहा कि स्त्री–पुरुष का संबंध आधिपत्य के बजाय साहचर्य पर आधारित होना चाहिये। उसने स्त्रियों की शिक्षा, नागरिकता तथा संपत्ति में अधिकार की वकालत की। बेट्टी फ्रीडन जिन्हें 'महिला मुक्त की जन्मदाता' भी कहा जाता है ने अपनी रचना 'द फेमिनिन मिस्टीक'(1963) में कहा कि स्त्रियों को भी स्वायत्तता और आत्मनिर्णय का अधिकार मिलना चाहिये।

- **आमूलपरिवर्तनवादी नारीवाद–** आमूल परिवर्तनवादी या उत्कृष्ठ नारीवादी विचारधारा की शुरुआत मुख्य रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात हुई। यह विचारधारा सामाजिक व्यवस्था की यथास्थिति में आमूल परिवर्तन की मांग करती है। यह विचारधारा निजी जीवन में समानता की समर्थक है। इस धारा की प्रमुख विचारक सिमोन द बुआ, शुलामिथ फायरस्टोन, केट मिलेट, वर्जीनिया वूल्फ, एलस्टीन, आयरिश मेरियम यंग हैं । फ्रांसीसी नारीवादी लेखिका सिमोन द बुआ ने अपनी चर्चित कृति 'द सेकंड सेक्स' (1949) में कहा कि," स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे ऐसा बना दिया जाता है" ("A woman is not born but made") सिमोन ने कहा कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को 'द्वितीय लिंग' का दर्जा दिया जाता है।

- वर्जीनिया वूल्फ ने महिलाओं की पराधीन स्थिति को देखते हुए कहा कि,"महिला होने के नाते मेरा कोई देश नहीं है।" फायरस्टोन ने अपनी चर्चित कृति 'डायलेक्टिक आफ सेक्स'(1970) के अंतर्गत नारीवाद की नई व्याख्या देकर इससे जुड़े आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने तकनीकी के विकास को स्त्री मुक्ति का साधन बताया। केट मिलेट ने अपनी पुस्तक 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स'(1970) के अंतर्गत बताया कि नारीवाद को एक राजनीतिक आंदोलन का रूप देने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि स्त्री–पुरुष का संबंध प्राकृतिक न होकर राजनीतिक है। उन्होंने कहा कि स्त्री पर पुरुष का जो नियंत्रण है वह जीव वैज्ञानिक अंतर की देन नहीं बल्कि सामाजिक संरचना का परिणाम है। केट मिलेट की उपर्युक्त पुस्तक अमेरिका में नारी मुक्ति आंदोलन को बढ़ावा देने में विशेष रूप से उपयोगी साबित हुई।

- **समाजवादी नारीवाद–** समाजवादी नारीवादी विचारधारा समाजवाद से जुड़ी मान्यताओं को आधार बनाकर महिलाओं के उत्थान का समर्थन करती है। समाजवादी नारीवादी यह नहीं मानते कि स्त्रियों की समस्या राजनीतिक और कानूनी रूप से समाप्त हो सकती है। उनके अनुसार स्त्री–पुरुष की असमानता का मूल कारण सामाजिक–आर्थिक संरचना है जो एक सामाजिक क्रांति के द्वारा ही समाप्त की जा सकती है। समाजवादी नारीवादी मुख्य रूप से पूंजीवादी व्यवस्था को स्त्रियों के

शोषण का कारण मानते हैं। इस धारा के प्रमुख विचारक चार्ल्स फ्यूरिए, फ्रेडरिक एंगेल्स और शीला रोबाथम हैं।

बोध प्रश्न

प्रश्न–1 महिलाओं के ऐतिहासिक विकास के बिन्दुओं को लिखिए।

.....
.....
.....
.....
.....

7.6 भारत में नारीवाद

पुरुष वर्चस्व हर एक समाज की सच्चाई है और भारतीय समाज भी इससे अछूता नहीं रहा है। भारतीय समाज के लगभग सभी वर्गों में महिलाओं की स्थिति आरंभिक समय से ही दोयम दर्जे की रही है। समाज की आधी आबादी होने के बावजूद महिलाएँ हमेशा से मूलभूत अधिकारों से वंचित रही हैं। भारत में भी नारीवाद पितृसत्ता के विरोध और समान अधिकारों की लड़ाई से जुड़ा हुआ है। यदि हम भारतीय संदर्भ में नारीवादी आंदोलन को देखें तो इसको तीन कालखंडों में बाँटा जा सकता है –

1. प्रथम चरण 1850–1915 तथा
2. द्वितीय चरण 1915–1947 तथा
3. तृतीय चरण 1947 से वर्तमान तक।

ऐतिहासिक कारण भारतीय सामाजिक संरचना, उपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के कारण भारत का नारीवादी आंदोलन पश्चिम से भिन्न है। भारत का नारीवादी आंदोलन 19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलन और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ा हुआ है। भारत में पहला नारीवादी आंदोलन समाज में विद्यमान अंधविश्वासों रूढ़ परंपराओं जैसे– सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा आदि को समाप्त करने के उद्देश्य पर केंद्रित था। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, फातिमा शेख, ताराबाई शिंदे, स्वामी दयानंद सरस्वती, पंडिता रमाबाई, सर सैय्यद अहमद खान आदि विचारकों और समाज सुधारकों ने महिलाओं से जुड़े हुए प्रश्नों को प्रमुखता दी तथा विभिन्न

संगठनों और कानूनी सुधार के माध्यम से स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह और स्त्री अधिकार की दिशा में समर्पित प्रयास किया।

दूसरा चरण महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से जुड़ा हुआ है। इस दौर में महिलाएँ स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर श्रमिक आंदोलन में भी शामिल होने लगी। इस चरण में भारतीय महिला संघ(1917) जैसे विभिन्न संगठनों की स्थापना हुई और शारदा एक्ट (1929) जैसे कानूनी सुधार हुए। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी और डॉ. अंबेडकर के महिला उत्थान की दिशा में किए गए प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जहाँ महात्मा गाँधी ने सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, छुआछूत व विधवाओं के शोषण का मुखर विरोध किया वहीं डॉ. अंबेडकर ने कानूनी सुधार (प्रसूति अवकाश, मताधिकार) व संवैधानिक प्रावधानों, समानता का अधिकार और लैंगिक विभेद का अंत के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में व्यावहारिक प्रयास किया। इस दौर में प्रमुख नारीवादियों में कामिनी राय, सरला देवी चौधरानी, दुर्गाबाई देशमुख की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

तीसरा चरण आजादी के बाद सार्वजनिक और निजी जीवन में समानता से जुड़ा हुआ है। यह प्रमुख रूप से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समानता, शिक्षा तक पहुँच, संपत्ति में अधिकार तथा लैंगिक विभेद के अंत से जुड़ा हुआ है।

यदि हम वर्तमान में भारतीय नारीवादी विचारकों और आंदोलनकारियों की बात करें तो मेघना पंत, वृंदा करात, मधु किश्वर, मेधा पाटकर, गीता सहगल, वंदना शिवा, निवेदिता मेनन, नीरा देसाई, रूथ वनिता का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है।

7.6.1 उदारवादी नारीवाद.

यह नारीवाद की वह किस्म है जो मुख्यधारा के समाज की संरचना के भीतर काम करती है ताकि महिलाओं को उस संरचना में एकीकृत किया जा सके। इसकी जड़ें अमेरिकी क्रांति द्वारा स्थापित सरकार के सामाजिक अनुबंध सिद्धांत तक जाती हैं। एबिगेल एडम्स और मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट शुरू से ही महिलाओं के लिए समानता का प्रस्ताव रखते थे। जैसा कि उदारवादियों के साथ अक्सर होता है, वे व्यवस्था के अंदर ही काम करते हैं, समझौतों के बीच बहुत कम काम करते हैं जब तक कि कोई कट्टरपंथी आंदोलन सामने नहीं आता और उन समझौतों को केंद्र से बाहर नहीं खींच लेता। मताधिकार आंदोलन के दिनों में और फिर कट्टरपंथी नारीवादियों के उभरने के बाद भी यह इसी तरह काम करता था।

7.6.2 कट्टरपंथी नारीवाद

नारीवाद में सैद्धांतिक विचार की दीवार प्रदान करता है। कट्टरपंथी नारीवाद बाकी नारीवादी स्वादों के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। कई लोगों द्वारा नारीवाद के अवांछनीय तत्व के रूप में देखा जाने वाला कट्टरपंथी नारीवाद वास्तव में नारीवाद से उत्पन्न होने वाले कई विचारों के लिए प्रजनन भूमि है; विचार जो नारीवाद की अन्य शाखाओं द्वारा विभिन्न तरीकों से आकार लेते हैं और आगे बढ़ते हैं। कट्टरपंथी नारीवाद लगभग 1967–1975 तक नारीवादी सिद्धांत का अग्रणी था। यह अब उतना सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत नहीं है जितना पहले था, न ही यह सांस्कृतिक नारीवाद के लिए कोई आधार प्रदान करता है । यह शब्द नारीवादी आंदोलन को संदर्भित करता है जो 1967–1968 में नागरिक अधिकारों और शांति आंदोलनों से उभरा था। इस समूह को कट्टरपंथी लेबल मिलने का कारण यह है कि वे महिलाओं के उत्पीड़न को उत्पीड़न का सबसे बुनियादी रूप मानते हैं, जो नस्ल,संस्कृति और आर्थिक वर्ग की सीमाओं को पार करता है। यह एक ऐसा आंदोलन है जिसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन, बल्कि क्रांतिकारी पैमाने का परिवर्तन है।

7.6.3 मार्क्सवादी और समाजवादी नारीवाद

मार्क्सवाद मानता है कि महिलाओं पर अत्याचार होता है, और इस अत्याचार के लिए पूंजीवादी/निजी संपत्ति व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराता है। इस प्रकार वे इस बात पर जोर देते हैं कि महिलाओं के उत्पीड़न को समाप्त करने का एकमात्र तरीका पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना है। समाजवादी नारीवाद मार्क्सवाद और कट्टरपंथी नारीवाद के मिलन का परिणाम है। इकोल्स मार्क्सवाद और कट्टरपंथी नारीवाद के बीच विवाह के रूप में समाजवादी नारीवाद का वर्णन करते हैं, जिसमें मार्क्सवाद प्रमुख भागीदार है। मार्क्सवादी और समाजवादी अक्सर खुद को कट्टरपंथी कहते हैं, लेकिन वे इस शब्द का उपयोग समाज की एक पूरी तरह से अलग जड़ को संदर्भित करने के लिए करते हैं।

बोध प्रश्न

प्रश्न–2 भारत में नारीवाद से संबन्धित बिन्दुओं को लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7.6.4 सांस्कृतिक नारीवाद

जैसे–जैसे कट्टरपंथी नारीवाद एक आंदोलन के रूप में समाप्त होता गया, सांस्कृतिक नारीवाद आगे बढ़ता गया। वास्तव में, बहुत से लोग पहले वाले से दूसरे वाले में चले गए। वे अपने साथ कट्टरपंथी नारीवाद नाम लेकर आए, और कुछ सांस्कृतिक नारीवादी अभी भी उस नाम का उपयोग करते हैं। सांस्कृतिक नारीवाद को कट्टरपंथी नारीवाद से अलग एक रूपरेखा के रूप में सूचीबद्ध भी नहीं करते हैं, लेकिन इकोल्स ने बहुत विस्तार से अंतरों को स्पष्ट किया है। दोनों के बीच का अंतर काफी चौंकाने वाला है जबकि कट्टरपंथी नारीवाद समाज को बदलने के लिए एक आंदोलन था, सांस्कृतिक नारीवाद ने महिलाओं की संस्कृति बनाने के बजाय मोहरावाद की ओर वापसी की। इस प्रयास से कुछ सामाजिक लाभ हुए हैं उदाहरण के लिए, बलात्कार संकट केंद्र; और निश्चित रूप से कई सांस्कृतिक नारीवादी सामाजिक मुद्दों में सक्रिय रही हैं।

1960 के दशक में सामाजिक परिवर्तन के लिए विभिन्न आंदोलन टूट गए या उन्हें अपना लिया गया, लोगों में सामाजिक परिवर्तन की संभावना के बारे में निराशावाद हो गया। उनमें से कई ने अपना ध्यान वैकल्पिक निर्माण पर केंद्रित कर दिया, ताकि अगर वे प्रमुख समाज को बदल न सकें, तो वे जितना संभव हो सके उससे बच सकें। संक्षेप में, कट्टरपंथी नारीवाद से सांस्कृतिक नारीवाद में बदलाव इसी बारे में था। इन वैकल्पिक निर्माण प्रयासों के साथ सामाजिक परिवर्तन के लिए काम करना छोड़ने के कारणों की व्याख्या शायद उचित ठहराने की गई। यह धारणा कि महिलाएं स्वाभाविक रूप से दयालु और कोमल होती हैं, सांस्कृतिक नारीवाद की नींव में से एक है, और इसका एक प्रमुख हिस्सा बनी हुई है। कुछ सांस्कृतिक नारीवादियों द्वारा रखी गई एक समान अवधारणा यह है कि विभिन्न लिंग अंतर जैविक रूप से निर्धारित नहीं हो सकते हैं, वे अभी भी इतने गहराई से जड़ जमाए हुए हैं कि उन्हें दूर करना मुश्किल है ।

7.6.5 परिस्थितिकी–नारीवाद

नारीवाद की यह शाखा प्रकृति में राजनीतिक या सैद्धांतिक से कहीं ज्यादा आध्यात्मिक है। यह देवी पूजा और शाकाहार से जुड़ी हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। इसका मूल सिद्धांत यह है कि पितृसत्तात्मक समाज अपने संसाधनों का शोषण करेगा, बिना इस बात की परवाह किए कि पितृसत्तात्मक/पदानुक्रमिक समाज में विकसित दृष्टिकोणों के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में दीर्घकालिक परिणाम क्या होंगे। समाज द्वारा पर्यावरण, जानवरों या संसाधनों के साथ किए जाने वाले व्यवहार और महिलाओं के साथ किए जाने वाले व्यवहार के बीच अक्सर समानताएं खींची जाती हैं। पितृसत्तात्मक संस्कृ

ति का विरोध करते हुए, पर्यावरण–नारीवादियों को लगता है कि वे पृथ्वी को लूटने और नष्ट करने का भी विरोध कर रहे हैं।

7.6.6 चुनौतियाँ

नारीवादियों के समक्ष अलग–अलग प्रकार की चुनौतियाँ हैं। चूँकि प्रत्येक समाज की संस्कृतियाँ अलग हैं। इसलिये महिलाओं की पराधीनता और शोषण के कारण तथा संरचनाएँ भी अलग–अलग हैं। नारीवादी आंदोलन के समक्ष सबसे प्रमुख व्यवहारिक चुनौती स्त्रियों के प्रति बनी बनाई रूढ़ अवधारणाएं और पूर्वाग्रह हैं। सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों के विरुद्ध की मानसिकता का निर्माण हजारों वर्षों का परिणाम है। असंख्य सुधारों के बावजूद भी लैंगिक भेदभाव सार्वजनिक जीवन की एक हकीकत है। नारीवादी आंदोलन की एक प्रमुख चुनौती समाज में विद्यमान असमानता और स्त्रियों के शोषण की समाप्ति के विचार को लेकर नारीवादी आंदोलन से जुड़े विचारकों के मध्य असहमति भी है। नारीवाद का प्रमुख उद्देश्य पितृसत्तात्मक समाज को समाप्त करना है लेकिन नारीवाद के अंतर्गत इसके तरीके पर सहमति नहीं है। जिस वजह से नारीवादी आंदोलन की गति धीमी रही है।

7.6.7 संभावनाएँ

नारीवादी सिद्धांत विविध और विविधतापूर्ण हैं। सभी लिंग के अधीनता महिलाओं के अनुभवों का विश्लेषण करते हैं, महिलाओं के उत्पीड़न की जड़ें, लिंग असमानता कैसे कायम रहती है, और लिंग असमानता के लिए अलग–अलग उपाय पेश करते हैं। उदारवादी नारीवाद कानूनी, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों तक महिलाओं की असमान पहुंच का तर्क देती है। नारीवाद लैंगिक भेदभाव, लैंगिक शोषण और उत्पीड़न को समाप्त करने का एक आंदोलन है। नारीवाद एक जटिल अवधारणा है, जिसके अर्थ और अभिप्राय में पीढ़ियों, जातीय पहचानों, यौन अभिविन्यासों, सामाजिक वर्गों, राष्ट्रीयता और असंख्य पहचानों के आधार पर बहुत अंतर है।

7.7 सारांश

नारीवाद लैंगिक भेदभाव, लैंगिक शोषण और उत्पीड़न को समाप्त करने का एक आंदोलन है। नारीवाद एक जटिल अवधारणा है, जिसके अर्थ और अभिप्राय में पीढ़ियों, जातीय पहचानों, यौन अभिविन्यासों, सामाजिक वर्गों, राष्ट्रीयता और असंख्य पहचानों के आधार पर बहुत अंतर है। नारीवाद से जुड़े हुए विचारकों का मानना है कि आज के वैज्ञानिक चिंतन के युग में शिक्षा के विस्तार के साथ यह स्पष्ट हो चुका है कि

स्त्री–पुरुष की मानसिक और शारीरिक क्षमताओं तथा उत्तरदायित्व से जुड़ी योग्यताओं में कोई अंतर नहीं है। जहां भी स्त्रियों को अवसर मिला है वहाँ वे अपने आपको साबित कर चुकी हैं। शारीरिक क्षमता से जुड़े क्षेत्रों में भी स्त्रियाँ पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। सेना तथा खेलकूद के क्षेत्रों में भी स्त्रियों ने नए कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इसलिए स्त्री को सिर्फ अशक्त या अबला के रूप में देखना तर्कसंगत नहीं है। स्त्रियों की हीन स्थिति सामाजिक व्यवस्था की उपज है न कि प्राकृतिक व्यवस्था की देन। नारीवादी आंदोलन का सभी प्रकार के समाजों पर कमोबेश प्रभाव पड़ा है। नारीवादी आंदोलन के कारण स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हुआ है और कई दूरगामी परिणाम भी प्राप्त हुए हैं। वोट देने के अधिकार, शिक्षा का अधिकार, निजता का अधिकार, विवाह एवं तलाक के कानून में परिवर्तन, दहेज एवं बाल विवाह पर प्रतिबंध जैसे विभिन्न कानूनों एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता से महिलाओं की दशा में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है।

आज भी शासन व्यवस्थाओं सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा महिला सशक्तिकरण के प्रयास क्रमिक रूप से जारी हैं जिसके सकारात्मक परिणाम हासिल हुए हैं और आगे ढेरों संभावनाएं भी हैं। आज नारीवादी विचारकों का उद्देश्य स्त्रियों को पुरुष के समान बनाना नहीं बल्कि प्राकृतिक अंतर को स्वीकार करते हुए उनकी सामर्थ्य का संपूर्ण उपभोग करने तथा समाज के द्वारा स्थापित कृत्रिम असमानताओं को दूर करने का प्रयास करना है क्योंकि स्त्री–पुरुष समानता स्थापित करके ही किसी भी समाज का संपूर्ण विकास संभव है।

7.8 बोध प्रश्न

प्रश्न–1 सब्जेक्शन ऑफ वीमेन 1869 किसकी रचना है ?

(1) सिमोन द बुआ (2) फायर स्टोन (3) स्टूअर्ट मील (4) वूल्फ

प्रश्न–2 महिला मुक्ति की जन्मदाता कौन है ?

(1) स्टूअर्ट मील (2) बेटट्री फ्रीडन (3) वूल्फ (4) शुलामिथ

प्रश्न–3 ''स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे ऐसा बना दिया जाता है।''

(1) बेटट्री फ्रीडन (2) सिमोन द बुआ (3) स्टूअर्ट मील (4) वूल्फ

प्रश्न–4 यह किसने कहा कि ''महिला होने के नाते मेरा कोई देश नही है।''

(1) वर्जीनिया वूल्फ (2) स्टूअर्ट मील (3) शुलामिथ (4) सिमोन द बुआ

प्रश्न–5 डायलेक्टिक ऑफ सेक्स 1970 किसकी रचना है ?

(1) स्टूअर्ट मील (2) सिमोन द बुआ (3) वूल्फ (4) फायर स्टोन

बोध प्रश्न के उत्तर

(1) 3 (2) 2 (3) 2 (4) 1 (5) 4

7.9 सन्दर्भ सूची

- Altekar, A.S. 1962, The Position of Woman in Hindu Civilization, Matial Banarsidas, Delhi.
- Aikara, Jacob. 2004. Education: Sociological Perspective. Jaipur and New Delhi: Rawat.
- Mills, C. Wright. 1975 (1959). *The Sociological Imagination*. Harmondsworth: Penguin.
- Bauman, Zygmunt. 1990. *Thinking Sociologically*. Oxford, OX, UK; Cambridge, Mass., USA: B. Blackwell.
- परमार, शुभ्रा, नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, 2015।
- विमल कुमार 26 नवम्बर, 2022 नारीवाद के विविध आयाम चुनौतियाँ एवं संभावनाएं
- कुमार, रमेश (2008), संस्कृति, साहित्य और स्त्री एक आलोचनात्मक विचार,नई दिल्ली अकादमिक प्रतिभा ।
- मिस मारिया. (1983).नारीवादी शोध की पद्धति की ओर।
- जी. बी. द्वारा संपादित, महिलाओं के अध्ययन के सिद्धांत, लंदन रूटलेज और केगन पॉल।
- मिलमैन, एम. ए. (1975). एक और आवाज़ सामाजिक जीवन और सामाजिक विज्ञान पर नारीवादी दृष्टिकोण, न्यूयॉर्क डबलडे।
- स्मिथ, डी. ई. (1974). समाजशास्त्र की एक कट्टरपंथी आलोचना के रूप में महिलाओं का दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय।
- निषाद, अरुण (2018), आधुनिक संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान , वर्जिन सामग्री पीठ।
- बटलर, जूडिथ (1990) जेंडर ट्रबल फेमिनिज्म एंड द सबवर्सन ऑफ आइडेंटिटी, लंदन रूटलेज।
- कैरोलीन रामज़ानोग्लू और जेनेट हॉलैंड। नारीवादी पद्धति। चुनौतियाँ और विकल्प, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली (2002)।
- हैमरस्ली, एम. (1992)। नारीवादी पद्धति पर। समाजशास्त्र।

इकाई-8 शिक्षा और समाजीकरण

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 शिक्षा और समाजशास्त्र

8.3 समाजीकरण

8.4 समाजीकरण के उद्देश्य

8.4.1 आधारभूत नियमबद्धता

8.4.2 अनुशासन का विकास

8.4.3 आकाक्षाओं की पूर्ति

8.4.4 सामाजिक क्षमताओं का विकास

8.4.5 सामाजिक दायित्वों को पूरा करने में प्रशिक्षण

8.5 समाजीकरण के प्रभावशाली अंग

8.5.1 परिवार, माता–पिता और समाजीकरण

8.5.2 विद्यालय, सम–समूह (मित्रमंडली) और समाजीकरण

8.5.3 धर्म, संस्कृति, जातीय स्तर और समाजीकरण

8.6 समाजीकरण की विशेषताएं

8.6.1 समाजीकरण सीखने की प्रक्रिया है

8.6.2 समाजीकरण एक निरंतर आजीवन प्रक्रिया है

8.6.3 अनुकरण से प्रभावित

8.6.4 समाजीकरण की प्रक्रिया सापेक्षिक होती है

8.6.5 समाजीकरण में सांस्कृतिक तत्वों को आत्मसात किया जाता है

8.6.6 समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा संस्कृति का हस्तांतरण होता है

8.6.7 समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनने की प्रक्रिया

8.6.8 अनुकूलनशीलता

8.7 सारांश

8.8 बोध प्रश्न

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.10 संदर्भ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आपः–

- शिक्षा और समाज के सम्बंध को समझ सकेंगे,
- समाजीकरण को समझने में सफल हो सकेंगे,
- समाजीकरण के अंगों को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में शिक्षा, समाजशास्त्र और समाजीकरण पर विचार किया गया है। इस इकाई के शिक्षा और समाजीकरण के अंतःसम्बंधों को वर्णित किया गया है। साथ ही साथ समाजीकरण के अर्थ, प्रक्रिया एवं महत्ता की भी चर्चा की गई है। विविध सामाजिक अंगों जैसे परिवार, माता–पिता, विद्यालय, मित्रमंडली, धर्म, संस्कृति और जातीय स्तर का समाजीकरण पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन किया गया है।

8.2 शिक्षा और समाजशास्त्र

शिक्षा का अर्थ शिक्षण संस्थानों के अनुसार तो संकुचित हो जाता है, परंतु समाज के अनुसार इसका अर्थ बहुत ही व्यापक है। एक साधारण व्यक्ति के अनुसार शिक्षा का अर्थ पढ़ने–लिखने के ऐसे कार्यक्रमों से है जो विभिन्न प्रकार की शिक्षा–संस्थानों में उपलब्ध होते हैं, किन्तु शिक्षा का स्वरूप इससे कहीं अधिक व्यापक है। अंग्रेजी में 'शिक्षा' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के जिस शब्द से हुई है, उसका अर्थ काफी व्यापक है– शिक्षित अथवा प्रशिक्षित करना, प्रथ–प्रदर्शन करना तथा विकसित करना। हिन्दी भाषा में देखा जाए तो शिक्षा का अर्थ है–सिखाना अथवा सीख देना। सिखाना शब्द अपने आप में ही काफी व्यापक है। सिखाने के अंतर्गत वे सभी चीजें आती हैं, जो सिखाई जा सकती हैं। इसमें शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, सामाजिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक आदि सभी गुणों के विकास की भावना निहित है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व–विकास के लिए ही नहीं वरन् उनके सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई शिक्षा की परिभाषाएं निम्न हैं–

- कौटिल्य के अनुसार– शिक्षा मानव को एक सुयोग्य नागरिक बनाना सिखाती है तथा उसका व्यक्तिगत विकास करती है।

- हैडरसन के अनुसार– यदि शिक्षा केवल सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करती है तो वह केवल अतीत की पुनरावृत्ति करती है। शिक्षा केवल बच्चों की अभिवृद्धि और विकास की प्रक्रिया अर्थात एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक वातावरण के रूप में सामाजिक विरासत को उत्तम और बुद्धिमान पुरुषों एवं स्त्रियों के विकास के लिए प्रयोग किया जा सके। यह शिक्षा की वही प्रक्रिया है जिसका समर्थन दार्शनिकों और शिक्षा सुधारकों ने किया है। यही शिक्षा की सत्य धारणा है।
- जॉन डीवी के अनुसार– शिक्षा व्यक्ति की उम्र योग्यताओं के विकास का नाम है जो उसे उसके वातावरण पर नियंत्रण रखना सिखाती है और उसकी संभावनाओं को पूर्ण करती है।
- टी पी नन के अनुसार– शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है जिससे कि वह अपने उच्चतम योग्यता के अनुसार मानव जीवन को मौलिक योगदान दे सके।
- रूसो के अनुसार– शिक्षा अंदर से होने वाला विकास है बाहर से एक साथ होने वाली वृद्धि नहीं यह प्राकृतिक मूल प्रवृत्तियों के क्रियाशील होने से विकसित होती है वाह्य शक्तियों की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप नहीं।
- जॉन मिल्टन के अनुसार– मैं पूर्ण तथा उदार शिक्षा उसको कहता हूं जो व्यक्ति को शांति तथा युद्ध दोनों समय में व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों को न्यायोचित ढंग से दक्षता और उदारता के साथ करना सिखाती है।
- फ्रोबेल के अनुसार– शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक के अंदर की शक्तियों को बाहर लाया जाता है।

समाजशास्त्र शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर हुई है, जिसमें पहला शब्दा 'सोसियस' (Socius) लैटिन भाषा से एवं दूसरा शब्दा 'लोगस' (Logus) ग्रीक भाषा से लिया गया है। इस तरह से समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ समाज का शास्त्र या समाज का विज्ञान है अर्थात् सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य का समाज के प्रति कर्तव्यों आदि का विवेचन करने वाला शास्त्र। समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है, यह एक ऐसा विषय है, जिसमें मानव समाज के विभिन्न स्वरूप, संरचना प्रक्रियाओं का क्रमबद्ध तरीके से अध्यापन किया जाता है। फ्रांस के दर्शनशास्त्री अगस्त कॉम्टे प्रथम विचारक हैं जिन्होंने एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र विषय का निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किया। समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। इस शास्त्र के अन्तर्गत मुख्य रूप से समाज का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र की मुख्य विषय–वस्तु सामाजिक सम्बन्ध है। सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए ही समाजशास्त्र का जन्म

और विकास हुआ है। मैकाइवर ने समाजशास्त्र को सामाजिक सम्बन्धों का जाल माना है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विद्वानों ने भी समाजशास्त्र को परिभाषित किया। जैसे–

- **वार्ड के अनुसार–** समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।
- **गिडिंग्स के अनुसार–** समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है।
- **गिंसवर्ग के अनुसार–** समाजशास्त्र मानवीय अतर्क्रियाओं और अंतर्सम्बंधों, उनकी दशाओं और परिणामों का अध्ययन है।
- मैक्स वेबर के अनुसार– समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो कि सामाजिक क्रिया का उद्देश्यपूर्ण (व्याख्यात्मक) बोध कराने का प्रयत्न करता है।
- जानसन के अनुसार– समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक समूहों, उनके आन्तरिक स्वरूपों या संगठन के प्रकारों, उन प्रक्रियाओं का जो संगठन के इन स्वरूपों को बनाये रखने अथवा उन्हें परिवर्तित करने का प्रयत्न करती है तथा समूहों के बीच संबंधों का अध्ययन करता है।
- मैकाइवर और पेज के अनुसार– समाजशास्त्र समाजिक सम्बन्धों का जाल है।
- दुर्खीम के अनुसार– समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधित्व का विज्ञान है।
- ऑगस्त कॉम्टे के अनुसार– समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है।

8.3 समाजीकरण

शिक्षा समाज की एक उपव्यवस्था है और सामाजिक संगठन में इसका पर्याप्त महत्व है। शिक्षा परिवार के पश्चात विद्यालय द्वारा दी जाने वाली प्राथमिक संस्था है। समाज में बालक लिंग, परिवार, सामाजिक वातावरण, वर्ग, जाति एवं वंश आदि के आधार पर भिन्नता प्रकट करता है, जिसका प्रभाव विद्यालय में शैक्षिक पाठ्यचर्या में अक्सर दिखाई पड़ता है। अतः शिक्षा की प्रक्रिया तथा समाजीकरण का अंतःसंबंध महत्वपूर्ण है। समाज में रहन–सहन एवं व्यवहार के द्वारा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसका प्रभाव विद्यालयों में अध्ययन की प्रक्रिया में विभेदकारी रूप में पड़ता है। अतः बालकों द्वारा जिस समाजीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभाव का विद्यालय में प्रवेश होता है, उसका निश्चित रूप से उनकी शिक्षा, कार्यों, प्रदर्शनों तथा उपलब्धियों पर पड़ता है।

मानव सामाजिक प्राणी है। मनुष्य जन्म लेकर समाज में आता है और अपने साथ लाई हुई जन्मजात शक्तियों को सामाजिक वातावरण में विकसित करके सामाजिक बनने का प्रयास करता है। जन्म के समय उसमें सामाजिकता का कोई गुण नहीं दिखाई पड़ता है, परन्तु धीरे–धीरे वह सामाजिक वातावरण से

प्रभावित होने लगता है और उसका समाजीकरण होने लगता है। समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति रहन–सहन, व्यवहार, प्रवृत्तियों, मूल्यों आदि को विशिष्ट समाज के अनुरूप ग्रहण करता है। इस प्रकार केवल रहन–सहन, खान–पान ही समाजीकरण में नहीं आता, वरन मानव की समस्त प्रवृत्तियों को जो व्यक्तिगत अथवा प्राकृतिक नहीं हैं, समाजीकरण द्वारा ही निर्धारण होता है जिसे जैविक भी कह सकते हैं।

समाजीकरण के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है कि विभिन्न आदिवासी लोग कच्चा मांस भी खाते हैं जो कि सामान्य मनुष्य के लिए मुश्किल है। इसी प्रकार विनम्रता, शिष्टाचार आदि समाजीकरण है। महिलाओं को भारतीय समाज में सिर पर आंचल रखना सिखाया जाता है जबकि पुरुष निःसंकोच भ्रमण करते हैं। अतः देखा जा सकता है कि मानव के समस्त क्रियाकलाप समाजीकरण की देन हैं।

समाजीकरण में अनेक प्रकार की उपक्रियाएं सम्मिलित रहती हैं। ये उपक्रियाएं जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त निरंतर चलती रहती हैं, जो कि मानव को सामाजिक बनने में योगदान देती हैं। मानव समाज में प्रचलित परम्पराओं, मान्यताओं, सामाजिक उद्देश्यों, संस्कृति और आकांक्षाओं के अनुपालन में लगकर इनके ही अनुरूप व्यवहार करना प्रारम्भ करता है।

इस प्रकार समाज द्वारा मान्य व्यवहारों के पालन के कारण उसकी प्रशंसा होती है और उसे सामाजिक मान लिया जाता है। समाजीकरण किसी समाज की प्रथाओं तथा व्यक्ति का दृष्टिकोण निर्मित करने पर प्रभाव डालता है। फलतः समाजीकरण ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाया जाता है तथा उसे चारित्रिक एवं सांस्कृतिक रूप में प्रबल बनाया जाता है। समाजीकरण में परिवार, मित्र मंडली तथा विद्यालय की प्रमुख भूमिका होती है। इसके साथ–साथ समाजीकरण की प्रक्रिया में जातीय स्तर, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर तथा धर्म की भी भूमिका होती है।

समाजीकरण की प्रक्रिया सदैव समान गति की नहीं रहती है। जीवन में संघर्ष के साथ–साथ सुख–दुख, उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। व्यक्ति बचपन से ही कई प्रकार की समस्याओं से जूझते हुए आगे बढ़ता है, अतः समाज में जीवन यापन करते हुए उसका समाजीकरण हो जाता है और वह समाज का एक अभिन्न अंग बन जाता है जो अपने कार्यों से समाज के विकास में सहायक होता है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समाजीकरण सभी समाजों के सदस्यों का स्वयं के विशिष्ट समाज के अन्तर्गत होता है। इसका अर्थ है कि भारतीय समाज के उत्तर भारतीय का समाजीकरण तथा दक्षिण अफ्रीकी समाज में उनका समाजीकरण बिल्कुल भिन्न है। समाजीकरण एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है जो जीवनपर्यंत चलती रहती है।

अतः समाजीकरण जीवन भर जटिल समाजिकता को सीखने की प्रक्रिया है। विद्यालय इसका एक साधन मात्र है। विद्यालय में बालक अपने ज्ञानात्मक कौशलों की अभिवृद्धि करता है तथा अपनी समकक्षी मित्रमंडली में जो अनुभव प्राप्त करता है, वह इसके ज्ञानात्मक कौशल, सामाजिक निपुणता एवं शैक्षिक अभिप्रेरणा को प्रभावित करता है।

8.4 समाजीकरण के उद्देश्य

समाजीकरण के निम्न उद्देश्य हैं :–

8.4.1 आधारभूत नियमबद्धता

सामाजिक जीवन सुचारु रूप से चलता रहे इस हेतु समाज में अनुशासन एवं नियमबद्धता का होना जरूरी है। समाजीकरण का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में अनुशासन एवं नियमबद्धता उत्पन्न करना है।

8.4.2 अनुशासन का विकास–

समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति को सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को स्वीकार करना और सद्भाव में व्यवहार करना सिखाया जाता है। बचपन से ही बच्चों को अच्छे कामों के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और बुरे कामों की सजा दी जाती है। बच्चा समाज से ही सही और गलत में फर्क करना सीखता है। परिवार में बच्चे को सुबह उठने, पढ़ने, स्कूल जाने और सोने की आदत डाली जाती है। इसके अलावा व्यक्ति के जीवन में स्वाभाविक प्रवृतियों अचेतन पर इच्छाओं की पूर्ति के लिए दबाव डालती है, जिसे सामाजिक नियमों और आचार संहिताओं के अनुसार व्यवहार करके एक समायोजित व्यक्तित्व के साथ एक व्यक्ति द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार, समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से, एक व्यक्ति भविष्य के उद्देश्यों और सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्थितियों में व्यवहार करता है।

8.4.3 आकाक्षाओं की पूर्ति

अनुशासन स्वयं व्यक्ति को कोई पुरस्कार नहीं देता बल्कि आकांक्षाओं की पूर्ति में सहायक होता है। व्यक्ति की इच्छाओं का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि यहाँ किस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है? उदाहरण के लिए, यदि किसी समाज की अर्थव्यवस्था उच्च तकनीकी ज्ञान पर आधारित है, तो बहुत से लोग उद्योगपति, वैज्ञानिक या इंजीनियर बनने की ख्वाहिश रखेंगे। समाजीकरण की प्रक्रिया का उद्देश्य व्यक्ति में आकांक्षाओं की प्रकृति का निर्धारण करना और उन्हें अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायता

करना है। समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति में उन सामाजिक क्षमताओं और क्षमताओं की पूर्ति के लिए स्वीकृत सामाजिक प्रथाओं को निर्धारित और उनका पालन कर सकती है।

8.4.4 सामाजिक क्षमताओं का विकास

सामाजिक क्षमताएं उन गुणों को संदर्भित करती है जो व्यक्ति को समाज के अनुकूल बनाने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, पत्र लिखने की कला, पड़ोसियों के साथ विनम्र व्यवहार, दोस्तों के साथ स्पष्ट बातचीत, बड़ों का सम्मान और भोजन की सुंदर व्यवस्था आदि कुछ ऐसी सामाजिक क्षमताएं हैं जो व्यक्ति के राजनीतिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करती हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्ति में उन सामाजिक क्षमताओं का विकास करना है जिससे वह भी अपने कार्यक्षेत्र में अपने उत्तरदायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सके।

8.4.5 सामाजिक दायित्वों को पूरा करने में प्रशिक्षण

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसकी स्थिति अन्य लोगों की तुलना में क्या है। इसे ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को कई तरह की भूमिकाएं निभानी होती है। उदाहरण के लिए, एक नेता और अनुयायी, शिक्षक और छात्र, और वक्ता और श्रोता की भूमिकाएँ एक दूसरे से भिन्न लेकिन एक दूसरे के पूरक हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया यह सिखाती है कि विभिन्न परिस्थितियों में अन्य लोगों के व्यवहार को कैसे अनुकूलित किया जाए और उन व्यक्तियों के अनुकूल होने के लिए किस प्रकार की भूमिका निभाई जाए। किसी व्यक्ति की भूमिका यह निर्धारित करती है कि उसके पास किस प्रकार के गुण, विचार, दृष्टिकोण और व्यक्तित्व विशेषताएँ होनी चाहिए।

8.5 समाजीकरण के प्रभावशाली अंग

समाज विविध सामाजिक अंगों से युक्त होता है। इन अंगो का समाजीकरण में क्या योगदान होता है, इसका अध्ययन करना आवष्यक है। जैसे–

8.5.1 परिवार, माता–पिता और समाजीकरण–

परिवार समाजीकरण का पहला चरण है। बालक जन्मोपरांत अपने परिवार में ही देखता–सुनता और समझता है। तत्पश्चात वह कई क्रियाएं स्वाभाविक रूप से सीखता चला जाता है। देखा जाए तो समाजोपयोगी व्यवहार में सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार और गुणों का समावेश होता है, जिसमें

ज्ञानात्मक विकास, आत्मनियंत्रण, उपकरणीय योग्यता तथा माता–पिता के स्तर से समानता सम्मिलित होते हैं।

जैजॉक और मार्क्स द्वारा दिया 'कंफुलेंस मॉडल' बौद्धिक विकास का मॉडल है, जो मूल समाजीकरण सिद्धांत में प्रासंगिक आयाम जोड़ता है। देखा जाता है कि बच्चों को परिवार में जिस प्रकार का मौखिक वार्तालाप तथा अनुशासन मिलता है वे उसी प्रकार परिपक्व होते हैं, अर्थात यह कहना बिल्कुल भी गलत नहीं होगा कि किसी–किसी बच्चे को उसकी उम्र से अधिक परिपक्व बना दिया जाता है, जबकि किसी बालक में औसत बौद्धिक विकास से कम विकास होता है। फलतः यह मौखिक व्यवहार का परिणाम कहा जा सकता है।

बालक के संस्कार माता–पिता और परिवार पर निर्भर करते हैं। बालक के संस्कार गर्भस्थ काल से ही निर्मित होने लगते हैं जिन्हें जन्म के पश्चात् विकसित होने का अवसर मिलता है। परिवार अथवा कुटुम्ब व्यक्ति का अनिवार्य समाज है जिसके आधार व्यक्ति के माता–पिता हुआ करते हैं। माता–पिता बालक के पोषण और रक्षण का उत्तरदायित्व निर्वाह करने में अपना कर्तव्य पालन करते हैं। माता–पिता बालक की आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति का भरसक प्रयास करते हैं। कभी–कभी माता–पिता का बालक के प्रति व्यवहार सन्तुलित नहीं रहता है। कभी दोनों ही बालक पर असीमित प्यार उड़ेलकर बालक के असामाजिक तत्वों पर ध्यान नहीं देते। कभी माता लाड में आकर बालक को अधिक प्यार करती है और पिता उतना प्यार नहीं कर पाता। कभी एक से अधिक बच्चे होने पर जिनमें लड़के–लड़कियों दोनों ही हो सकते हैं, विविध स्तर का प्यार पाते हैं। इस प्रकार माता–पिता असन्तुलित प्यार के कारण बालक में सामाजिक गुणों का असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। इकलौते बालक में माता–पिता के अटूट प्यार के कारण सामाजिक गुणों का अभाव पाया जाता है। वह स्वावलम्बी नहीं होता, थोड़े ही संघर्ष में घबरा जाता है। वह सदैव यही इच्छा करता है कि उसके माता–पिता के समान समाज भी उसे उसी प्रकार असीमित प्यार करे, उसे महत्त्व दे और उसके अवगुणों पर ध्यान न दे, परन्तु समाज ऐसा नहीं कर पाता। इस व्यवहार से वह कुण्ठित होकर सन्तुलन खो बैठता है और उसका व्यक्तित्व भी असन्तुलित हो जाता है।

माता–पिता का बालकों के प्रति अमनोवैज्ञानिक व्यवहार उनके समाजीकरण को बहुत प्रभावित करता है। अधिक प्यार में पला लड़का अथा लड़की विषम व्यवहार से युक्त होते हैं। अधिक प्यार में पली लड़की सामाजिकता के अभाव के कारण सुखी वैवाहिक जीवन व्यतीत नहीं करती। इसीलिए यह कहना असंगत नहीं होगा कि बालक 'समस्यात्मक' नहीं होते, वरन् माता–पिता 'समस्यात्मक' होते हैं जिनका असन्तुलित व्यवहार बालकों के समाजीकरण में बाधक होता है। वास्तव में बालकों का असामाजिक व्यवहार एवं

सन्तुलित व्यक्तित्व उनके माता–पिता की समस्याओं को प्रकट करते हैं। यदि माता–पिता आपस में आदर्श सम्बंध रखते हैं तो उनके प्रत्येक व्यवहार में सन्तुलन रहता है और बालकों के व्यवहारों में भी संतुलन उत्पन्न हो जाता है। यदि माता–पिता का पारस्परिक व्यवहार संतुलित और आदर्श न हुआ तो बालक का व्यवहार भी असंतुलित रहेगा और वह समाज की मान्यताओं से मेल नहीं खा सकेगा।

8.5.2 विद्यालय, सम–समूह (मित्रमंडली) और समाजीकरण–

यदि परिवार समाजीकरण का पहला चरण है तो विद्यालय उसके बाद आने वाला दूसरा चरण है। सामान्यतः अभिभावक यह प्रयास करते हैं कि उनके बालक अच्छे विद्यालय में प्रवेश पा जाएं। अच्छे विद्यालय की खोज के कारण एकमात्र बालकों को पुस्तकीय शिक्षा के अच्छे होने मात्र से नहीं, वरन इस बात से भी है कि उनके बालकों को अच्छे विद्यालय में अच्छे बालकों की संगति मिल सकेगी और उनका समाजीकरण अच्छी प्रकार होने लगेगा।

वास्तव में विद्यालय बालकों में समाजीकरण की प्रगति को नया और तीव्र वेग देने वाला होता है। 6 वर्ष की आयु तक बालक माता–पिता और परिवार के सदस्यों के मध्य रहकर अपना समाजीकरण करता है, परन्तु जैसे ही वह 6 वर्ष के बाद विद्यालय आता है तो उसे वहां अपनी आयु के विविध समाजों से आये बालक मिलते हैं। उन बालकों के बहुत–से आचरण, व्यवहार उनसे भिन्न होते हैं। बालक ऐसी स्थिति में किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और सोचने लगता है कि वह कैसा आचरण करे, परन्तु धीरे–धीरे वह उनके सम्पर्क में आकर अपने को अनुकूलित कर लेता है और उसका समाजीकरण द्रुत गति से होने लगता है। इस स्तर पर अध्यापक का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। अध्यापक को चाहिए कि वह अपने उत्तम व्यक्तित्व से बालकों की समाजीकरण की प्रवृत्ति को सुदिशा प्रदान करे। अध्यापक बालक के माता–पिता का स्थान ग्रहण किए हुए होता है, उसे बालकों के सम्मुख सर्वमान्य सामाजिक आदर्श व्यवहार प्रस्तुत करना चाहिए जिससे बालकों को अनुकूल सामाजिक व्यवहार करने की दिशा और सीख मिल सके जो बालक के लिए आगे चलकर लाभदायक हो। विद्यालय में ही बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक और नैतिक विकास होता है। यह विकास बालक को समाजीकरण प्राप्त करने में सहयोग देता है। स्कूल जाने वाले बालक का व्यवहार घर पर रहने वाले बालक से अधिक सामाजिक हो जाता है। विद्यालय के अच्छे और बुरे होने से बालक के समाजीकरण की प्रगति निर्भर करती है। अच्छे विद्यालयों में अच्छे बालक और अच्छे अध्यापक होते हैं जो अच्छा वातावरण तैयार करते हैं। उनका समाजीकरण पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। बुरे विद्यालय में उपर्युक्त वातावरण बुरा होने से बालक का समाजीकरण अच्छी प्रकार नहीं हो पाता। इसलिए विद्यालयों का वातावरण सुधारपूर्ण होना आवश्यक है।

बालक जैसे–जैसे किशोरावस्था में प्रवेश करता है परिवार की भूमिका कम होती जाती है। वास्तव में मित्र–मंडली का प्रभाव युवावस्था में अत्यधिक पड़ता है। छात्र अपने मित्रगणों के क्रियाकलापों में रुचि लेता है तथा एक अलग समाज का निर्माण करता है जो उसका स्वयं का होता है। जार्ज हरबर्ड मीड ने इस मंडली को 'महत्त्वपूर्ण अन्य' के नाम से पुकारा है। मित्रमंडली पर पर्याप्त शोध किया जा चुका है। विचारकों ने पाया कि बालक अपने सहपाठियों से होड़ भी करता है अर्थात वह अलग–अलग एवं अव्यवस्थित रूप से चुने जाने पर भी आपस में प्रदर्शन के मामले में एक समान होने का प्रयत्न करता है जो कि सम–समूह के प्रभाव को दर्शाता है। कोलमैन ने गोरे और काले विद्यार्थियों पर शोध करते हुए बताया कि गोरे विद्यार्थियों की कक्षा में काले विद्यार्थियों का प्रदर्शन संतोषजनक था। अतः स्पष्ट है कि मित्रों का साथ समाजीकरण को प्रभावित करता है।

8.5.3 धर्म, संस्कृति, जातीय स्तर और समाजीकरण

बालक समाज में रहते हुए किसी–न–किसी धर्म का अनुयायी अवश्य होता है और वह उसके अनुरूप धर्म–संघ से भी सम्बन्ध रखता है। धर्म–संघ बालक के समाजीकरण को प्रभावित करता है। धर्म व्यक्ति को विविध मान्यताओं, आदर्शों और परम्पराओं को निर्मित करता है जिनका अनुसरण करने पर ही व्यक्ति के व्यवहार को सामाजिक मान्यता मिलती है।

हिन्दू परिवार में रहकर मांसाहार करना पाप है और नित्य स्नानादि करना आवश्यक है। यदि कोई हिन्दू बालक इन बातों का ध्यान दिए बिना कोई आचरण करता है तो उसकी निन्दा होती है। यही बात अन्य धर्मावलम्बियों के बालकों के सम्बन्ध में कही जा सकती है जो अपने धर्मानुसार सामाजिक आचरण करने के लिए बाध्य होते हैं। परिवार के बड़े–बूढ़े, बालकों में धार्मिकता और नैतिकता लाने का प्रयास करते हैं जिससे बालक के समाजीकरण की प्रगति में सहयोग मिलता है। संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत योग देती है। जैसा कि हम सभी जानते भी हैं कि व्यक्तित्व का निर्माण समाजीकरण पर निर्भर होता है। इसलिए संस्कृति को बालक के समाजीकरण का आधार माना जा सकता है। जिस देश और जाति की जैसी संस्कृति होती है उस देश और जाति की वैसी ही परम्पराएं, मान्यताएं और आदर्श होते हैं जिनका अनुपालन करने पर ही समाजीकरण होना सम्भव हो सकता है।

जाति एवं वंश भी शिक्षा को प्रभावित करते हैं। भारतीय समाज में प्राचीनकाल में जातिगत आधार पर शिक्षा की व्यवस्था थी। आधुनिक युग में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। उच्च एवं निम्न वर्ग के ये भाव समाजीकरण को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। कुछ जातियां अल्पसंख्यक होती हैं एवं कुछ जातियां बहुसंख्यक होती हैं। अल्पसंख्यक एवं शोषित वर्ग के लोगों का प्रदर्शन अन्य के मुकाबले निम्न होता है।

साथ ही आयु में भी अंतर पाया जाता है। लिटिल ने राष्ट्रमंडल के नए प्रवासियों के बच्चों की पढ़ने की आयु वहां के मूल नागरिकों के बच्चों से एक वर्ष ऊपर देखी।

भारत में विविध जातियों की शिक्षा में धर्म की भूमिका है। विद्वतजन उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं तथा धर्म के ठेकेदार के रूप में विकसित होते हैं जबकि निम्न जाति के लोग अपनी संस्कृति के गुणों को वंशानुगत प्राप्त करते हैं। ऐसी स्थिति में जाति के लोगों के बच्चे हीनभावना से ग्रस्त होकर विद्यालय में अव्वल नहीं आ पाते हैं। आधुनिक काल में शिक्षा को समाज के सभी वर्गों से जोड़ने का कार्य किया गया है। शिक्षा का यह लोकतांत्रिक रूप विश्व में एकसमान शिक्षा प्रदान करने की ओर अग्रसर होगा।

8.6 समाजीकरण की विशेषताएं

समाजीकरण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं

8.6.1 समाजीकरण सीखने की प्रक्रिया है

समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है। इसके द्वारा व्यक्ति समाज मे संस्कृति, आदर्श, मूल्य और परम्परा के अनुरूप व्यवहार करना सीखता है। चलना, बोलना, खाना तथा कपड़ा पहनना, पढ़ना लिखना आदि क्रियाएं व्यक्ति समाज में सीखता है, किन्तु समाज मे सभी प्रकार की क्रियाओं को सीखना समाजीकरण नहीं है। झूठ बोलना, चोरी करना, शराब पीना व अन्य नशा करना, जुआ व सट्टा खेलना, मिलावट व कालाबाजारी करना आदि आपराधिक प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाली क्रियाओं को सीखना समाजीकरण नहीं है। ये क्रियाएं सीखने की प्रक्रिया के नकारात्मक पक्ष हैं।

8.6.2 समाजीकरण एक निरंतर आजीवन प्रक्रिया है

समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त चलती रहती है। व्यक्ति जीवन पर्यन्त सीखता रहता है। समाजीकरण की एक विशेषता आजीवन प्रक्रिया है। व्यक्ति के जीवन में कभी ऐसा समय नहीं आता जब उसको सीखने के लिये कुछ न हों।

8.6.3 अनुकरण से प्रभावित

समाजीकरण की प्रक्रिया में अनुकूलन का विशेष महत्व है। बालक अपने परिवार, पड़ोस खेल के साथियों तथा अनेक दूसरे संगठनों से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से दूसरे लोगों के व्यवहारों का अनुकरण करते

हैं। इस प्रकार वे बहुत से सामाजिक व्यवहारों एवं गुणों को सीखते हैं जो समाजीकरण की प्रक्रिया को सरल बना देते हैं।

8.6.4 समाजीकरण की प्रक्रिया सापेक्षिक होती है

समाजीकरण की प्रक्रिया समय व स्थान के सापेक्ष होती है। प्राचीनकाल में अभिवादन की रीति करबद्ध प्रणाम करना अथवा चरण स्पर्श करना था। किन्तु अब हाथ मिलाना, हेलो या हाय के उच्चारण से स्वागत करना आधुनिकता का सूचक है। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय समाज में पर्दा प्रथा का चलन नहीं था। विशेष रूप से मध्यकाल से उत्तर भारत में पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ जो कमोवेश अभी भी विद्यामान है, जबकि दक्षिण भारत में पर्दा प्रथा का प्रचलन नही है।

8.6.5 समाजीकरण में सांस्कृतिक तत्वों को आत्मसात किया जाता है

समाजीकरण के द्वारा व्यक्ति अपने समाज की भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति के विभिन्न तत्वों को आत्मसात कर लेता है। किसी समाज के आदेश, मूल्य, व्यवहार के प्रतिमान क्या होंगे का निर्धारण संस्कृति करती है। व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा जाने–अनजाने दोनों ही रूपों में अपनी संस्कृति को आत्मसात् कर अपना व्यक्तित्व उसके अनुरूप ढालती है।

8.6.6 समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा संस्कृति का हस्तांतरण होता है

व्यक्ति अपनी संस्कृति मुख्यतया अपने परिवार से सीखता है तथा बड़े होने पर जो उसने सीखा है। परिवार के नये सदस्यों को सिखाता है। इस प्रकार संस्कृति का हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को होता हैं।

8.6.7 समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनने की प्रक्रिया

समाजीकरण समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनने की प्रक्रिया हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा बालक समाजिक कार्यों में भाग लेने योग्य बनता है। समाजीकरण, सामाजिक शिक्षण की प्रक्रिया है, इस प्रक्रिया में नवजात शिशु पालन–पोषण के क्रम में अपने सामाजिक वातावरण (परिवार, समुदाय, विद्यालय आदि) के व्यवहारों को नियंत्रित करता है तथा वांछित एवं अवांछित व्यवहार प्रतिमानों में अंतर करना सीखते हैं। इस प्रकार समाजीकरण के द्वारा ही कोई बालक समाज का सामान्य सदस्य बन पाता है।

8.6.8 अनुकूलनशीलता

समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ही बालक में अनुकूलन की क्षमता का विकास होता है। बालक का प्रारंभिक जीवन परिवार में माता–पिता, बाई–बहनों एवं परिवार के अन्य सदस्यों के बीच बीतता है। जब

बालक विदयार्थी जीवन में प्रवेश करता है तो उसे एक नए संसार का आभास होता है। उसे उस नए संसार में समायोजन करने के लिए नवीन गुणों का अर्जन करना पड़ता है। इस नवीन संसार मे प्रवेश करने से उसके सामाजिक संपर्क का दायरा विस्तृत हो जाता है। उसके सभी संपर्क बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया को नई दिशा प्रदान करते हैं जिससे बालक के व्यक्तित्व के विकास में सहायता मिलती है।

8.7 सारांश

इस इकाई में शिक्षा और समाजशास्त्र के अर्थ को समझाया गया है। साथ ही साथ समाजीकरण के अर्थ को भी समझाया गया है। शिक्षा की व्यापकता को दर्शाया गया है। शिक्षा को समाजिकता की कुंजी कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगा। समाजीकरण की प्रक्रिया को उसके प्रभावी अंगों के माध्यम से बताया है। परिवार, माता–पिता की सहायता से बालकों के सामाजिक बनने में जो अनुभव प्राप्त होते हैं, उसको बताया है। विद्यालय और मित्र सामाजिक स्तर को बनाने में सहायता करते हैं। धर्म, संस्कृति और जाति का भी समाजीकरण पर पूरा–पूरा प्रभाव पड़ता है।

8.8 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न–1 शिक्षा और समाजीकरण पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–2 समाजीकरण को प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न–1 समाजशास्त्र की उत्पत्ति में प्रयुक्त शब्द 'सोसियस' किस भाषा से लिया गया है?

(अ) लैटिन (ब) ग्रीक (स) अंग्रेजी (द) अमेरिकी

प्रश्न–2 एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र विज्ञान का निर्माण किसने किया?

(अ) गिडिंग्स (ब) गिंसबर्ग (स) अगस्त कॉम्टे (द) गर्ड

प्रश्न–3 समाजीकरण की प्रक्रिया में मित्र–मंडली को 'महत्वपूर्ण अन्य' के नाम से किसने पुकारा है?

(अ) कोलमैन (ब) जार्ज हरबर्ड मीड (स) मैक्स वेवर (द) कार्ल मार्क्स

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

3.1 (अ)

3.2 (स)

3.3 (ब)

8.10 संदर्भ सूची

- चौबे, डॉ सरयू प्रसाद; शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2020।
- त्यागी, जी.एस.डी.; शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार;विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2020।
- रुहेला, डॉ. सत्यपाल; भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र; राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2020।
- पाठक, पी.डी.; भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं; विनोद पुस्तक मंदिर; आगरा 2020।
- www.samareducation.com
- www.egyankosh.ac.in
- रानी, डॉ0 आशा, भारतीय शिक्षा और समाज, बुक्स आरकेड दिल्ली 2017।

इकाई 9 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा एवं अवधारणा

9.3 सामाजक परिवर्तन की विशेषताएं

9.4 सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका

9.4.1 नए विचारों का प्रचारप्रसार

9.4.2 संस्कृति को आने वाली पीढ़ी तक पहुंचाना

9.4.3 ज्ञान के क्षेत्र का विकास

9.4.4 परिवर्तन को ग्रहण करने में सहायक

9.4.5 शाश्वत सिद्धांतों को यथोचित रखना

9.4.6 सामाजिक परिवर्तन की दशादिशा का निर्धारण करना

9.5 शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन कैसे लाएं?

9.6 भारत में शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन

9.6.1 भारत में अंग्रेजी शिक्षा के कारण सामाजिक परिवर्तन

9.6.2 भारत में विज्ञान शिक्षा के कारण सामाजिक परिवर्तन

9.7 सारांश

9.8 बोध प्रश्न

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.10 संदर्भ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आपः

- सामाजिक परिवर्तन और उसकी विशेषताओं के विषय में जान सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका को समझ सकेंगे।
- भारत में शिक्षा द्वारा हुए सामाजिक परिवर्तन को जान सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। समाज में परिवर्तन होने पर उसके सभी अंगों पर उसका प्रभाव देखने को मिलता है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारक है जो समाज में मौजूद लोगों को समाज के हितों के अनुकूल सामाजिक परिवर्तन हेतु प्रेरित करती है। सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका अहम है। शिक्षा द्वारा भारतीय समाज में परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन भारतीय समाज के लिए हितकारी हुआ है, परन्तु कहीं–कहीं यह थोड़ा हानिकारक भी रहा है। सामाजिक परिवर्तन की कुछ विशेषताएं हैं जैसेव्यक्ति के विचारों में परिवर्तन, स्वभाव में परिवर्तन, ज्ञान में परिवर्तन आदि।

9.2 सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा एवं अवधारणा

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। संसार की प्रत्येक वस्तु में, स्थिति में एवं दशा में परिवर्तन होता रहता है। समाज जीवित व्यक्तियों का समूह है, जो अपने विचारों, मूल्यों व गतिविधियों में हमेशा गतिशील रहता है। अतः जब समाज के सदस्य गतिशील होते हैं तो समाज भी गतिशील होता है। यह गतिशीलता ही परिवर्तन का कारण बनती है। यह परिवर्तन क्रम कभी टूटता नहीं है। संसार की प्रत्येक वस्तु इस परिवर्तन क्रम में भाग लेती है। इसी के साथ ही प्रत्येक समाज की अपनी एक संरचना होती है, अपने व्यवहार प्रतिमान होते हैं और सामाजिक कार्यों को सम्पादित करने की विधियां होती हैं, जिनमें सदैव परिवर्तन होता रहता है। किसी समाज में परिवर्तन की गति धीरे होती है तो किसी समाज में परिवर्तन की गति तीव्र होती है।

सामाजिक परिवर्तन दो शब्दों से मिलकर बना है समाज और परिवर्तन। समाज का अर्थ केवल व्यक्तियों का समूह नहीं है, वरन् उस समूह में रहने वाले व्यक्तियों के आपस में जो सम्बंध है, उन सम्बंधों के संगठित रूप को ही समाज कहते हैं। समाज सामाजिक सम्बंधों का जाल है। परिवर्तन का अर्थ है बदलाव अर्थात पहले की स्थिति में बदलाव। मनुष्य की भाषा, विचार, आवश्यकताएं, जीवन, उद्देश्य, मूल्य, संस्कृति किसी ने किसी रूप में बदलती रहती है। समयानुकूल आदर्शों के परिवर्तन से जीवन के उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं में परिवर्तन आता रहता है और व्यक्तियों का रहनसहन, संघसंगठन आदि परिवर्तित होते

रहते हैं। इस प्रकार समाज की पहले की स्थिति और आज की स्थिति में आने वाला अंतर या बदलाव ही परिवर्तन है, जिसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। जब हम सामाजिक परिवर्तन को जानने का प्रयत्न करते हैं तो हमें मुख्यतः तीन बातों पर ध्यान देना होता है

(i) परिवर्तित होने वाली बातों तथा वस्तुओं की जानकारी

(ii) परिवर्तित न होने वाली बातों तथा वस्तुओं की जानकारी

(iii) परिवर्तन की घटना होने के समय विस्तार की जानकारी

जब हम इन जानकारियों को प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं तो उसके पश्चात हमारे लिए सामाजिक परिवर्तन को जानना संभव हो पाता है।

समाजों में कुछ ऐसे बुनियादी तत्व हैं जिनकी वजह से लोग एकदूसरे से बंधे रहते हैं। कोई भी समाज चाहे वह पुराना हो या नया, चाहे खुला हो या बंद, कोई भी समाज स्थिर नहीं रह सकता है। सभी तरह के समाजों में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। अंतर मात्र इतना है कि कुछ समाजों में इस परिवर्तन की दर धीमी होती है तो कुछ समाजों में परिवर्तन की गति तीव्र होती है। समाज के मूल्यों में, सम्बंधों में, प्रतिमानों में, रीतिरिवाजों में, सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन होता रहता हैं यही कारण है कि जिससे समाज आगे बढ़ता रहता है। विकास की तरफ अग्रसर होता है। इस परिवर्तन का क्षेत्र इतना व्यापक है कि पूर्ण समाज इससे प्रभावित हुए बिना रह नहीं पाता है। समाज के एक अंग में परिवर्तन का प्रभाव समाज के दूसरे अंगों पर पड़ना निश्चित है। जैसा कि हम जानते ही हैं, कि मनुष्य स्वयं ही गतिशील है, इसी कारण से समाज में परिवर्तन सार्वभौमिक है।

सामाजिक परिवर्तन की संकल्पना को समझने के लिए प्रगति, क्रम विकास, प्रक्रिया और ऐसे ही शब्दों का प्रयोग अक्सर किया जाता है। यह समझना आवश्यक है कि परिवर्तन की दर एवं प्रकृति किस प्रकार समाज में परिवर्तन लाती है। साधारण समाजों में परिवर्तन की दर धीमी होती है, जैसेअनुष्ठान, संस्कार, परंपरा, सामाजिक सोपान और जीवन यात्रा क्रम में परिवर्तन बहुत ही कम या मंद गति से होता है क्यों कि ये सभी बुनियादी तत्व हैं, जिसके कारण समाज आपस में एकदूसरे से सम्बद्ध रहते हैं, परन्तु युद्ध, भुखमरी, प्राकृतिक आपदा और व्याधि जैसी आदि आपदाओं एवं सांस्कृतिक सम्पर्क की घटनाओं में ऐसे तत्व धीरेधीरे कमजोर हो जाते हैं। यही कमजोर होने का क्रम धीरेधीरे सामाजिक परिवर्तन का कारण बनता है।

यदि हम ऐसे समाज की संकल्पना करें जिसमें सामाजिक परिवर्तन बिल्कुल भी न हो तो ऐसा संभव नहीं है। वास्तव में ऐसा समाज कल्पना मात्र ही हो सकता है। परिवर्तन सभी युगों में, सभी स्थानों में, सभी जीवित प्राणियों में, सभी भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं में चलता रहता है। आधुनिक भारत का स्वरूप मध्यकालीन भारत से भिन्न था और मध्यकालीन भारत का स्वरूप प्राचीनकालीन भारत से भिन्न था। वास्तव

में कोई भी समाज वर्तमान समय में जिस स्वरूप में है पहले वह उस स्वरूप में नहीं था और आने वाले समय में भी उस स्वरूप में नहीं रहेगा। पारिवारिक संस्थाएं, समूह, संस्कृति, सभ्यता, समुदाय, समाज के दर्शन, साहित्य कला आदि सभी में तो परिवर्तन होता रहता है। संग्रहालयों में हम इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि कही–कहीं संग्रहालयों में हमारी सभी ऐसी प्राचीन वस्तुओं को सहेज कर रखा गया है, जिससे हम अपने पूर्वजों के समाज के विषय में जान सकें।

कुछ विद्वानों ने भी सामाजिक परिवर्तन को अपने मतानुसार परिभाषित किया है। जैसे

- **सर जोन्स के अनुसार** सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है जो सामाजिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक संगठन के किसी अंग में अंतर या रूपान्तरण को वर्णित करने के लिए प्रयुक्त होता है।
- **किंग्सले डेविस के अनुसार** सामाजिक परिवर्तन से हमारा अभिप्राय उन परिवर्तनों से है जो सामाजिक संगठन अर्थात समाज की संरचना और कार्यों से उत्पन्न होते हैं।
- **जैन्सन के अनुसार** सामाजिक परिवर्तन को लोगों के कार्य करने तथा विचार करने की पद्धतियों में रूपान्तरण कहकर परिभाषित किया जा सकता है।
- **मैकाइवर तथा पेज के अनुसार** सामाजिक ढांचे में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।
- **डासन तथा गेटिस के अनुसार** सांस्कृतिक परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।

उपर्युक्त व्याख्यान एवं परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन में निम्न परिवर्तन निहित होते हैं:

- सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन
- सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन
- सामाजिक संरचना में परिवर्तन
- समाज के सदस्यों के जीवन से सम्बंधित परिवर्तन।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को इस प्रकार भी प्रस्तुत करते हैं

व्यक्तियों के अनुभवों में परिवर्तन
↓
व्यक्तियों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन
↓
सामाजिक अंतःक्रिया में परिवर्तन
↓
सामाजिक सम्बंधों में परिवर्तन
↓
सामाजिक संरचना में परिवर्तन
↓
सामाजिक परिवर्तन

9.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य है। आदि सृष्टि से आज तक सामाजिक परिवर्तन होता चला आ रहा है और भविष्य में भी यह प्रक्रिया निरंतर जारी रहेगी। इसलिए सामाजिक परिवर्तन की कुछ विशेषताएं भी होती हैं, जैसे कि

- किसी भी समाज की भौतिक अथवा अभौतिक संस्कृति बदलने पर सामाजिक परिवर्तन होता है।
- सामाजिक परिवर्तन पूरे सामाजिक ढांचे में भी हो सकता है तथा उसके किसी एक संगठन में भी हो सकता है।
- सामाजिक संगठन में होने वाले परिवर्तन की गति सामाजिक कार्यों में होने वाले परिवर्तनों से बहुत धीमी होती है।
- किसी भी समाज में शिक्षा के द्वारा जब व्यक्ति के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है तो उसके व्यवहार में भी परिवर्तन होता है।
- कोई भी समाज यदि खुला होता है अर्थात् स्वतंत्र विचारों का होता है तो उसमें परिवर्तन की गति तीव्र होती है परन्तु बन्द या स्थिर समाज में परिवर्तन की गति धीरे होती है।
- जब सामाजिक परिवर्तन की गति मंद पड़ जाती है या रुकने के समान हो जाती है तो ऐसे में एकाएक क्रांति की संभावना बढ़ जाती है तो एकाएक परिवर्तन भी होता है।
- किसी भी समाज में होने वाले सभी परिवर्तनों का स्वरूप स्थाई नहीं हो सकता है। यह समय के साथसाथ परिवर्तित होता रहता है।
- किसी भी समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप नियोजित व अनियोजित भी हो सकता है।
- यह जरूरी नहीं है कि किसी भी समाज में होने वाले परिवर्तन हमेशा विकास की तरफ ही ले जाएं, अपितु कभीकभी कुछ परिवर्तन ऐसे भी होते हैं जो अवनति का भी कारण बनते हैं।
- यदि ध्यान से देखा जाए तो पहले की अपेक्षा आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन अधिक और तीव्र होता है। ये स्वाभाविक व सामान्य ढंग से होने वाले परिवर्तन हमारे विचारों तथा सामाजिक संरचना को प्रभावित करते हैं।

9.4 सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका

सामाजिक परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण कारक शिक्षा है। शिक्षा और समाज में ऐसा घनिष्ठ सम्बंध है कि दोनों एक दूसरे को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। जैसा कि हम देखते भी हैं कि शिक्षा के कारण समाज में परिवर्तन आता है और समाज की परिस्थितियां शिक्षा को प्रभावित करती हैं। शिक्षा के बिना सामाजिक परिवर्तन की बात सोचना मुश्किल है। ऐसा इसलिए क्योंकि शिक्षा के अभाव में व्यक्ति जड़ की भांति होता है और हम जानते हैं कि जड़युक्त व्यक्ति या वस्तु में परिवर्तन लाना काफी कठिन कार्य है। व्यक्ति की श्रेष्ठता इसी में है कि वह परिवर्तन के अनुसार उसमें ढलना सीखे और आचरण करना सीखे। ऐसा करके मनुष्य परिवर्तन क्रम में दो प्रकार से भाग लेता है। पहला तो वह समाज में अपनी जरूरतों के हिसाब से परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है और दूसरा वह उत्पन्न हुए परिवर्तन के अनुसार ढलने का प्रयास करता है। शिक्षा केवल समाज पर ही अपना प्रभाव नहीं डालती है अपितु समाज में परिवर्तन लाने में भी सहायक होती है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन की दिशा में शिक्षा द्वारा किए जाने वाले कार्यों को हम निम्न प्रकार से उल्लिखित कर सकते हैं

9.4.1 नए विचारों का प्रचारप्रसार

शिक्षा समाज में ऐसे समाजोपयोगी नए विचारों का प्रचारप्रसार करती है जो समाज में परिवर्तन का माहौल तैयार करती है। समाज में कुछ अच्छे तो कुछ बुरे रीतिरिवाज, मूल्य और गुण विद्यमान रहते हैं और उन्हीं बुरे रीतिरिवाज, मूल्य और गुणों को शिक्षा के माध्यम से परिवर्तित करके समाज में परिवर्तन लाया जा सका है और लाया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप भारत में सतीप्रथा, बाल विवाह प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, छुआछूत, अस्पृश्यता, ऊँचनीच आदि कुरीतियों एवं प्रथाओं पर अंकुश शिक्षा के द्वारा प्रचारप्रसार के माध्यम से ही लगा पाना संभव हो सका है। इसी प्रकार वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी नएनए प्रयोगों, आविष्कारों, विचारों के माध्यम से शिक्षा समाज के उपयोग हेतु परिवर्तन लाने का कार्य करती है।

9.4.2 संस्कृति को आने वाली पीढ़ी तक पहुंचाना

शिक्षा समाज में मौजूद संस्कृति को भविष्य में आने वाली पीढ़ियों तक ले जाने का भी कार्य करती है। सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में मौजूद बड़ी पीढ़ी द्वारा छोटी पीढ़ी को संस्कृति का हस्तांतरण शिक्षा के माध्यम से ही होता है। यदि समाज में आए इस परिवर्तन को मौजूदा पीढ़ी द्वारा हस्तांतरित नहीं किया जाएगा तो उस परिवर्तन का कोई भी अर्थ नहीं रह जाएगा। बालकों को शिक्षित करते हुए इन सामाजिक

परिवर्तनों के बाद समायोजन स्थापित कराने का महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा के माध्यम से ही सम्पन्न होता है। सामाजिक परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए देखा जाए तो शिक्षा का यह कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

9.4.3 ज्ञान के क्षेत्र का विकास

शिक्षा वह है जिससे हम ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। ज्ञान वह तथ्य या जानकारी है जिसे हम याद रख सकते हैं। शिक्षा के माध्यम से ही हम ज्ञान को प्राप्त करते हैं, कौशल विकसित करते हैं और योग्यता प्राप्त करते हैं। शिक्षा नित्य नवीनता की ओर अग्रसर करती है और ज्ञानकोपार्जन का साधन बनती है। विश्व में लगातार नएनए आविष्कार एवं अनुसंधान होते रहते हैं। यह आविष्कार और अनुसंधान शिक्षा के माध्यम से ही संभव हो पाते हैं। इसके साथसाथ शिक्षा ही इन आविष्कारों एवं अनुसंधानों को देश विदेश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक लोगों के मध्य पहुंचाकर ज्ञान के क्षेत्र को बढ़ाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का विकास होता है। ज्ञान के इस विकास के कारण ही सामाजिक परिवर्तन को पाने में सफलता मिलती है।

9.4.4 परिवर्तन को ग्रहण करने में सहायक

मनुष्यों का यह स्वाभाविक गुण है कि वह पुरानी चीजों को छोड़कर नवीन चीजों को जल्द स्वीकार नहीं करता है। यह गुण कहिए या अवगुण वह पुरानी मान्यताओं, रूढ़ियों, परम्पराओं से चिपक कर रहना ही पसंद करता है। नए विचार या व्यवस्था चाहे कितने ही उपयोगी हों वह उन्हें जल्द स्वीकार करना पसंद नहीं करता है। इसके साथ ही साथ शुरुआत में तो वह उसका विरोध भी करता है। ऐसी स्थिति में शिक्षा ही है जो मनुष्य के मस्तिष्क में नए विचारों, व्यवहारों को अपनाने की क्षमता प्रदान करती है और उनमें मानसिक परिवर्तन करके उन्हें इन परिवर्तनों को ग्रहण करने के लिए तैयार करती है।

9.4.5 शाश्वत सिद्धांतों को यथोचित रखना

इस समाज के अपनेअपने शाश्वत सिद्धांत, मूल्य एवं मान्यताएं होती हैं। ये कुछ ऐसे सिद्धांत एव मूल्य होते हैं जिन्हें त्यागना उस समाज के लिए संभव नहीं होता है। नए परिवर्तन की इस आंधी में उस समय के ये शाश्वत सिद्धांत नष्ट न हो जाएं, ये देखना भी शिक्षा का ही काम है। वे ऐसे मूल्य एवं सिद्धांत हैं जो उस समाज की नींव होते हैं, जिन पर उस समाज का पूरा ढांचा टिका होता है। ऐसी स्थिति में शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो व्यक्तियों में अपने शाश्वत मूल्यों एवं सिद्धांतों को स्थाई बनाए रखने की भावना जागृत करती है।

9.4.6 सामाजिक परिवर्तन की दशादिशा का निर्धारण करना

सामाजिक परिवर्तन की दशा एवं दिशा का निर्धारण शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। परिवर्तन तो हमेशा ही स्वागत योग्य है। इस परिवर्तन की दशादिशा का उपयोगी एवं सही होना भी उतना ही आवश्यक है। दिशाहीन परिवर्तन हमेशा समाज के लिए घातक होता है। किसी भी परिवर्तन की दशा एवं दिशा को समाजोपयोगी केवल शिक्षा के माध्यम से ही बनाया जा सकता है और उस परिवर्तन का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का आंकलन भी शिक्षा के द्वारा ही संभव है। ऐसी स्थिति में शिक्षा ही यह निर्धारित करती है कि कौन से परिवर्तन अपनाने के योग्य हैं और कौन से नहीं।

9.5 शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन कैसे लाएं?

अभी तक तो हमने यह समझ लिया है कि शिक्षा ही सामाजिक परिवर्तन लाने में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षा ही सामाजिक परिवर्तन को नियंत्रित रखने में भी सहायक है। अब हमारे लिए यह समझना आवश्यक है कि किस प्रकार से सामाजिक परिवर्तन को लाया जा सकता है और किस प्रकार से नियंत्रित किया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन मुख्यतः दो प्रकार की रीतियां से लाया जा सकता है।

i) संगठित एवं नियोजित रूप से धीरेधीरे करके परिवर्तन लाना।

(ii) क्रान्ति अथवा आन्दोलन के माध्यम से तीव्र या एकाएक परिवर्तन लाना।

इन दोनों विधियों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने में तो सफलता प्राप्त की जा सकती है परन्तु पहली विधि दूसरी विधि की अपेक्षा ज्यादा उपयोगी एवं संतोषजनक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पहली विधि द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने में जिस समाज की प्राप्ति होती है उसमें समाज के लोगों के मध्य पारस्परिक सौहार्द, प्यार, जागरूकता, सहयोग, मित्रता, भाईचारा आदि प्रेमपूर्ण भाव देखने को मिलते हैं, परन्तु दूसरी विधि द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने में समाज में घृणा, अत्याचार, हिंसा, संवेग, मानसिक आघात, अशांति आदि का समावेश बहुतायत से देखने को मिलता है। इसलिए हमें यह निश्चित करना होगा कि हम शिक्षा के माध्यम से पहली विधि की सहायता से संगठित, धीरेधीरे एवं नियोजित सामाजिक परिवर्तन लाएं, जिससे समाज में खुशहाली एवं सौहार्द स्थापित हो सके।

शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में घनिष्ठ सम्बंध हैं। दोनेां एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन होता है और समाज का यह परिवर्तित रूप पुनः शिक्षा को प्रभावित करके उसमें परिवर्तन लाता है। ये परिवर्तन समय के अनुसार अनिवार्य होते हैं। समाज की दृष्टि में यह बात उत्पन्न

करना कि समाज में परिवर्तन होना अनिवार्य है तथा उन परिवर्तनों में आवश्यक परिवर्तन विशेष या अमुक ही हो सकते हैं, काफी कठिन कार्य होता है। यह कठिन कार्य एक मात्र शिक्षा के द्वारा ही संभव है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति को निम्न बातों के लिए उत्तरदायी बनाया जा सकता है।

- समाज के व्यक्ति इस बात को समझें कि सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य है।
- प्रत्येक व्यक्ति यह सोच सके कि सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप केवल अमुक परिवर्तन ही लाए जाने चाहिए।
- प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक परिवर्तनों के प्रति सचेत होकर योग्य नेतृत्व कर सके और वांछित परिवर्तन को लाने का उत्तरदायित्व वहन कर सकें।

9.6 भारत में शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन

शिक्षा के बिना सामाजिक परिवर्तन कर पाना कठिन कार्य है, यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा। इसका मतलब यह है कि सामाजिक परिवर्तन लाने से पूर्व शिक्षा की व्यवस्था किया जाना भी आवश्यक है। समाज में बहुत से सुधार या परिवर्तन लाने के लिए कार्य किए जाते हैं, परन्तु शिक्षा के अभाव के कारण वे सुधार या परिवर्तन अक्सर सफल नहीं हो पाते हैं। इसलिए शिक्षा के माध्यम से इस कमी को दूर करके सामाजिक परिवर्तनों की गति को तीव्र किया जाता है। शिक्षा द्वारा व्यक्तियों के विचारों, मूल्यों, अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाया जाता है। ऐसा करने से लोगों में विकास या प्रगति के लिए उत्सुकता पैदा होती है। इस तरह से शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण अभिकरण बन जाती है। इसलिए शिक्षाविदों, राजनीतिज्ञों, शैक्षिक नियोजकों ने शिक्षा की इस शक्ति पर विशेष बल दिया है। शिक्षा आयोग का तो यहां तक कहना है कि ''शिक्षा सामाजिक क्रान्ति की वाहक है।

भारतीय समाज में भी शिक्षा के द्वारा परिवर्तन पूर्णतः परिलक्षित होता है। समाजशास्त्री कामत ने भारत में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के बीच के सम्बंधों को स्पष्ट किया है। कामत ने यह बताया कि ब्रिटिशकाल के प्रारम्भ से लेकर 19वीं शताब्दी तक शिक्षा की उदारवादी भूमिका थी। कामत ने बताया कि प्राचीन शिक्षा सामंतवादी, आर्थिकसामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप थी और जो अपने आप में एक अवरोध था। इसने बुर्जुआ समाज और आधुनिक राष्ट्रवाद के नए मानकों एवं मूल्यों को भी पर्याप्त अवसर दिया। शिक्षा के कारण पड़ा यह उदारवादी प्रभाव अंदरूनी था और इसने दो दिशाओं में अपनी सार्थकता को दर्शाया।

(i) देशी सामाजिक पद्धतियों एवं संस्कृति की घनिष्ठ संविक्षा की और सुधार किए, जिसके कारण सामाजिक तथा धार्मिक सुधार एवं सत्यशोधक समाज जैसे प्रतिवाद आंदोलन हुए।

(ii) नवीन स्थिति में आत्ममूल्यांकन, आत्मखोज की प्रक्रिया की ओर अग्रसर होना, जिससे सामाजिक सम्बद्धता के वैकल्पिक केन्द्र का सृजन हुआ और राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए साम्राज्यवादविरोधी आंदोलन की शुरुआत हुई।

पहले शिक्षा का प्रचारप्रसार मुख्य रूप से समाज में उच्च जाति एवं शहरी उच्च स्तर के लोगों तक ही सीमित हुआ करता था, परन्तु अब धीरेधीरे वह निम्न जातियों, मध्य जातियों एवं मध्यम स्तर तक के लोगों तक पहुंचने लगा। इसी के कारण राष्ट्रवाद और सामाजिक जागृति की प्रक्रिया को शहरों में श्रमजीवी वर्ग और ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों तक विस्तार मिला। इस प्रक्रिया में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथसाथ सामाजिक परिवर्तन के आंदोलनों को भी पूर्ण बल मिला, जिसके कारण हमें सफलता प्राप्त हुई।

इस प्रकार से देखें तो शिक्षा की औपनिवेशिक व्यवस्था की वृद्धि, औपनिवेशिक सामजिक संरचना के सम्मुख अपने आप में एक गंभीर प्रतिवादों को विकसित कर रही थी जो आगे चलकर सामाजिक परिवर्तन का कारण बनी। इस प्रकार हम भारत में मुख्यतः दो शिक्षाओं द्वारा सामाजिक परिवर्तन देख सकते हैं

9.6.1 भारत में अंग्रेजी शिक्षा के कारण सामाजिक परिवर्तन

अंग्रेजी शिक्षा ने भारत के सामाजिक परिवर्तन की दिशा में बहुत अहम रोल अदा किया। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके भारत ने कई वर्षों के अंधेरेपन का परित्याग किया और अपने समाज में असाधरण धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिवर्तन किए। राजा राममोहन राय, केशव चन्द्रसेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, देवेन्द्र नाथ टैगोर आदि महापुरुषों ने शिक्षा के बल पर ही भारत में धार्मिक परिवर्तन की एक गाथा लिखी जो भारतीय इतिहास में बहुत बड़ा योगदान हैं राजनीतिक परिवर्तन के फलस्वरूप भारत को स्वतंत्रता दिलाने का कार्य महात्मा गांधी, दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, जवाहर लाल नेहरू, भगत सिंह, सुभाष चन्द्र बोस, सरदार वल्लभ भाई पटेल आदि स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने किया। शिक्षा के कारण ही भारत में अनेक कुप्रथाओं जैसेसतीदाह, बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, अस्पृश्यता, छुआछूत, ऊँचनीच आदि को समाप्त करने में सफलता मिली है। इस प्रकार से भारतीय समाज में परिवर्तन अंग्रेजी शिक्षा के कारण हुआ।

9.6.2 भारत में विज्ञान शिक्षा के कारण सामाजिक परिवर्तन

भारतीय समाज में धर्म और नैतिकता में सदैव आस्था रही है। इसके कारण भारतीय समाज में न्याय, सहयोग, सहिष्णुता, निःस्वार्थता, प्रेम आदि मूल्यों का समावेश रहा है। भारत में वैज्ञानिक शिक्षा के कारण

आज हम बहुत से ऐसे आविष्कार करने में सफल हुए जिन्होंने भारतीय समाज को नई ऊँचाइयों पर ले जाने का कार्य किया है, परन्तु विज्ञान की इस शिक्षा को प्राप्त करने के पश्चात हमारे इन मूल्यों और परम्परागत धारणाओं में परिवर्तन हो गया है। आज हम अपने इन मूल्यों को भूलकर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्रों में शोषण और स्वार्थ की भावना से ग्रसित होकर अपने अलावा किसी और के विषय में सोचे बिना आगे बढ़ रहे हैं। सहयोग और सहिष्णुता जैसे मूल्य हमारे समाज से खोते जा रहे हैं। इसके कारण समाज में अलगाव, घृणा, द्वेष आदि हानिकारक भावनाओं का धीरेधीरे उदय हो रहा है, जो भारतीय समाज के विघटन और विनियोजन का कारण बन रहा है। इस तरह से हम देख सकते हैं कि विज्ञान शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का बहुत बड़ा कारक है।

9.7 सारांश

इस इकाई में सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा एवं संकल्पना या अवधारणा को समझाया गया है। यह बताया गया है कि सामाजिक परिवर्तन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो समाज में हमेशा विद्यमान रहती है, क्योंकि इसके अभाव में समाज नष्ट हो जाएगा। सामाजिक परिवर्तन हमे**शा होता आया है। जब समाज की संरचना, स्थापित संस्थाओं की कार्यशैली में बदलाव होता है तो** सामाजिक परिवर्तन होता है। सामाजिक परिवर्तन की कुछ विशेषताएं होती हैं जिसके फलस्वरूप समाज में हमें सामाजिक परिवर्तन का आभास होता है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का उत्तरदायी कारक है, जो नए विचारों का प्रचारप्रसार करता है, परिवर्तन को स्वीकार करने में सहायता प्रदान करता है, शाश्वत मूल्यों को बनाए रखता है, ज्ञान के क्षेत्र का विकास करता है आदि। शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने का तरीका भी सीखने को मिलता है। भारत में शिक्षा ने किस प्रकार से परिवर्तन किया है वह हम इसके प्रभावों को देखकर जान सकते हैं। अतः शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो किसी भी समाज में होने वाली गतिविधियों को प्रभावित करती है और इसके अनुसार परिवर्तन लाने की ताकत रखती है।

9.8 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 सामाजिक परिवर्तन की संकल्पना को समझाइए और उसकी विशेषताएं बताइए।

प्रश्न 2 सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न 1 डासन तथा गेटिस के अनुसार कौनसा परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।

(अ) आर्थिक (ब) राजनीतिक (स) सांस्कृतिक (द) सतही

प्रश्न 2 सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारक क्या है?

(अ) शिक्षा (ब) धन (स) वैभव (द) पलायन

प्रश्न 3 सामाजिक परिवर्तन की कौन सी गति समाजोपयोगी होती है?

(अ) तीव्र (ब) अतितीव्र (स) वैक्तिक (द) धीरे धीरे

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (स)
2. (अ)
3. (द)

9.10 संदर्भ सूची

- रुहेला, डॉ सत्यपाल; भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र; राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2020।
- चौबे, डॉ सरयू प्रसाद; शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2020।
- लाल, प्रो0 रमन बिहारी; श्रीमती सुनीता; शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय आधार; अनू बुक्स मेरठ 2021।
- माथुर, डॉ0 एस0 एस0, शिक्षा के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2020।
- अग्रवाल, मनीष; भारत में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन; ग्रीन लीफ पब्लिकेशन्स; वाराणसी 2017।
- www.targetnotes.com
- www.vikaspedia.com

इकाई 10 शिक्षा, आर्थिक एवं राजनीतिक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 शिक्षा, अर्थव्यवस्था और राजव्यवस्था

10.3 आर्थिक व्यवस्था और आर्थिक समाजशास्त्र

10.4 राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक समाजशास्त्र

10.5 भारत में शिक्षा के आर्थिक पक्ष

- 10.5.1 शिक्षा का प्रसार एवं जनतंत्र
- 10.5.2 उपलब्ध साधनों का उचित उपभोग
- 10.5.3 शिक्षा के लिए धन का संतुलित वितरण
- 10.5.4 शिक्षा और धर्म
- 10.5.5 शिक्षा द्वारा आर्थिक विकास में आने वाले बंधन
- 10.5.6 शिक्षा और रोजगार

10.6 भारत में शिक्षा के राजनीतिक पक्ष

- 10.6.1 शिक्षा और अंतरसंस्थात्मक राजनीति
- 10.6.2 शिक्षा संस्थाओं की संस्थात्मक राजनीति
- 10.6.3 राजनीति और शिक्षा की प्रभावोत्पादकता
- 10.6.4 शिक्षा और विद्यार्थियों का राजनीतिक समाजीकरण

10.7 सारांश

10.8 बोध प्रश्न

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.10 संदर्भ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आपः

- शिक्षा का आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के साथ सम्बंध समझ सकेंगे।
- भारत में शिक्षा के आर्थिक पक्षों को जान सकेंगे।
- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में शिक्षा के महत्व को समझ सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भारतीय आर्थिक एवं राजनीतिक पक्ष का शिक्षा के साथ सम्बंध पर विचार किया गया है। शिक्षा का आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर जो प्रभाव पड़ता है उस विषय पर भी चर्चा की गई है तथा इन दोनों का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है उसकी भी चर्चा की गई है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र के आर्थिक एवं राजनीतिक स्तर को ऊपर ले जाने में सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। शिक्षा विकास की गति को द्रुतगति से बढ़ाती है।

10.2 शिक्षा, अर्थव्यवस्था और राज व्यवस्था

शिक्षा एक महत्वपूर्ण और सर्वव्यापी विषय है। शिक्षा विकास का मूल साधन है। शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है। शिक्षा संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु में 'अ' प्रत्यय लगने से बना है। शिक्षा का अर्थ है सीखना और सिखाना अर्थात् सीखनेसिखाने की क्रिया को ही शिक्षा कहा जाता है। अंग्रेजी में शिक्षा की जगह एजूकेशन शब्द का प्रयोग होता है, जो लैटिन भाषा के 'एजूकेटम' से बना है, जिसमें 'ए' का अर्थ है 'अंदर से' और 'ड्यूको' का अर्थ है 'आगे बढ़ना' अर्थात अंदर की शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करना। शिक्षा मनुष्यों की जन्मजात शक्तियों का विकास करके उन्हें सामाजिक रूप से सुदृढ़ बनाती है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जो सदैव चलती रहती है।

अर्थव्यवस्था का सन्धि विच्छेद करने पर हमें दो शब्दों की प्राप्ति होती हैअर्थ एवं व्यवस्था। इसमें अर्थ का तात्पर्य 'धन' अर्थात् मुद्रा एवं व्यवस्था का तात्पर्य है एक स्थापित कार्यप्रणाली। अर्थव्यवस्था एक प्रकार से उत्पादन, वितरण एवं खपत की एक सामाजिक व्यवस्था है। अर्थव्यवस्था एक ऐसी संस्थागत प्रणाली है जो समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा जो विभिन्न प्रकार की क्रियाकलापों, संस्थाओं, अभिव्यक्तियों एवं इन सबके पारस्परिक सम्बंधों से मिलकर बनी हो। अर्थव्यवस्था के अंतर्गत लोगों की

आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाता है। इसकी सहायता से लोग जीविका प्राप्त करते हैं और अपना जीवनयापन करते हैं।

राज व्यवस्था या राजनीतिक व्यवस्था दोनों ही एक समान हैं। इसे राजतंत्र भी कहा जा सकता है। राज व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था या राजतंत्र किसी भी प्रकार की राजनीतिक इकाई को कहते हैं अर्थात् यह किन्हीं भी लोगों का ऐसा समूह होता है जो सामूहिक पहचान रखें, संसाधनों को नियंत्रण में रखकर उनका प्रयोग करने में सक्षम हो, आपस में किसी पदानुक्रम के आधार पर आदेश देने वालों और उन आदेशों का पालन करने वालों में संगठित हो। राजनीतिक व्यवस्था एक प्रकार से समाज में व्याप्त समस्त सामाजिक व्यवहार को देखने, परखने एवं जांचने की एक व्यापक प्रणाली है। यह समाज की भलाई के लिए कार्यों का निर्धारण करती है। इसका एक प्रमुख लक्षण है बल प्रयोग अर्थात् समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझते हुए प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करना जिससे समाज की भलाई एवं विकास सुनिश्चित हो सके।

10.3 आर्थिक व्यवस्था और आर्थिक समाजशास्त्र

मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा गया है क्योंकि मनुष्य समाज में जन्म लेता है और समाज ही में अपनी सभी क्रियाएं करता है। व्यक्तियों के सहयोग से आगे बढ़ता है। व्यक्तियों में किस प्रकार की अन्तःक्रिया होती है इसका ज्ञान हमें समाजशास्त्र के माध्यम से होता है और उस समाज में वहां की शिक्षा व्यवस्था किस प्रकार की होगी? यह समाज के हाथों निर्धारित होती है और शिक्षा ही निर्धारित करती है कि किस शिक्षा के माध्यम से यहां के लोगों की अर्थव्यवस्था को कैसे सुदृढ़ बनाया जाय और वह व्यक्तियों में कैसे संचालित किया जाएगा।

किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था के अनेक आधार होते हैं। वह किस माध्यम से व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान करता है ऐतिहासिक, दार्शनिक, अर्थशास्त्रीय, मानवशास्त्रीय, राजनीतिक, समाजशास्त्रीय आदि। इनमें आर्थिक आधार का बहुत अधिक महत्व होता है। 1960 के बाद के वर्षों में शिक्षा के आर्थिक आधार को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है, इसके फलस्वरूप 'शिक्षा का अर्थशास्त्र' नामक नये अध्ययन क्षेत्र का विकास हुआ।

शिक्षा के आर्थिक पक्ष को लेकर कुछ प्रासंगिक प्रश्न जुड़े हुए हैं। जैसेशिक्षा कहां तक व्यक्ति के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक है? शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात क्या व्यक्ति अपना जीविकोपार्जन चला सकता है? शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने आगे के जीवन का निर्धारण करता है। क्या शिक्षा उत्पादन

में सहयोगी होगी? क्या शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात देश से गरीबी कम की जा सकती है? क्या शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात गरीबों को भूख से नहीं जूझना पड़ेगा? क्या शिक्षा हमारी अर्थव्यवस्था को मजबूत बना देगी? बहुत सारे सवालों से जूझते हुए हमारे युवा जो आज भी शिक्षा तो प्राप्त कर रहे हैं पर रोजगार से वंचित हैं। बहुत सारे युवक युवतियां जो डिग्री तो प्राप्त कर रहे हैं पर उससे उनका आगे का भविष्य कैसा होगा, उनको नहीं पता।

आधुनिक परिवेश में शिक्षा को आर्थिक विकास का मूलाधार माना जाता रहा है। शिक्षा व्यक्ति की योग्यता, कार्य कुशलता, कार्य क्षमता, बौद्धिक, शारीरिक वृद्धि करके उसे उत्पादक बनाती है। जब व्यक्ति शिक्षित होकर किसी कार्य को करता है तो वह आर्थिक दृष्टि से अपनी क्षमता का प्रदर्शन करता है और वह समाज और राष्ट्र की उन्नति में योगदान देने में समर्थ होता है। इनको लेकर कुछ विद्वानों के मत भी हैं जैसे

- प्रो0 आत्मानन्द मिश्र का मत है कि ''आर्थिक विकास से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जो किसी लम्बी अवधि में देश की कुल राष्ट्रीय आय की उत्तरोत्तर वृद्धि करती है। यदि इसकी वृद्धि दर जनसंख्या के बढ़ने की दर से अधिक होती है तो प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती है।''
- रास्टोव महोदय के विचार ''आर्थिक विकास पूंजी एवं कार्यशील शक्ति तथा जनाधिक्यता के मध्य ऐसा सम्बंध है जिससे प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होती है।''
- गेयर तथा वाल्डविड के अनुसार ''सकल राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय आर्थिक विकास या आर्थिक वृद्धि के परिसूचक होते हैं।''

आर्थिक वृद्धि से आशय सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि से लगाया जाता है, जबकि आर्थिक विकास में सकल राष्ट्रीय आय से वृद्धि के साथसाथ लोगों की यह अभिवृत्ति भी शामिल होती है जिससे वे राष्ट्रीय आय से लाभ उठा सकें और उनका जीवन स्तर ऊंचा उठ सके। वस्तुतः आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास में यह मूलभूत अन्तर का परिसूचक है। किसी भी राष्ट्र के विकास में अर्थव्यवस्था निर्धारित करती है ये शिक्षा की नवीन तकनीकी और कौशल विकास की तरफ ले जाता है।

समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र का एक उपविषय आर्थिक समाजशास्त्र है। विद्वान नीलजेस्मेलसर ने आर्थिक समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''आर्थिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के सामान्य संदर्भ रूपरेखा, चलों व व्याख्यात्मक प्रतिरूपों का उन सभी क्रियाओं की जटिल सम्पूर्णता में उपयोजन है जिनका उत्पादन, वितरण, विनिमय तथा दुर्लभ वस्तुओं व सेवाओं के उपभोग से सम्बंध होता है।'' आर्थिक समाजशास्त्र का दो पहलुओं पर विशेष झुकाव रहता है। पहला किस प्रकार आर्थिक क्रिया व्यक्तियों के कार्यों तथा समूहों के रूप में संरचित हो जाती है? किन मूल्यों के द्वारा उन्हें कानूनी रूप प्राप्त हो जाता है?

किन प्रतिमानों व स्वीकृतियों से वे संचालित होती हैं तथा किस प्रकार से समाजशास्त्रीय चल के कारक परस्पर सम्बंधित होते हैं? दूसरा आर्थिक संदर्भ प्रकट होने वाले समाजशास्त्रीय चलों तथा अनार्थिक संदर्भ में प्रकट होने वाले समाजशास्त्रीय चलों के मध्य सम्बंध।

10.4 राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक समाजशास्त्र

इस बात पर विचार किया जाए कि राजनीतिक शिक्षा को कैसे प्रभावित करती है एवं राजनीति और शिक्षा के मध्य क्या सम्बंध है, तो यह निर्विवाद है कि जब राज्य शिक्षा को प्रभावित करता है तो राजनीति भी शिक्षा पर अपना प्रभाव डालती हैं सामान्य अर्थों में राजनीति का तात्पर्य राज की नीति से लगाया जाता है, अर्थात् जिस नीति या सिद्धान्तों पर राज्य अपनी शासन व्यवस्था को आधारित करता है उसी को राजनीति कहते हैं। शिक्षा के विभिन्न आधारों में राजनीति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अरस्तु और प्लेटो के समय से लेकर अब तक शिक्षा के राजनीतिक आधार व महत्व को स्वीकार किया गया है। आधुनिक युग में शिक्षा की राजनीति का बहुत द्रुतगति से विकास हो रहा है। किसी देशा में राज्य या सरकार की जो नीति और सिद्धांत होते हैं वे शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य और शिक्षण को प्रभावित करते हैं। वर्तमान समय में राजनीति शब्द का अर्थ अधिक व्यापक हो गया है।

सर्वप्रथम अरस्तु ने राजनीति शब्द का प्रयोग किया था। परम्परागत रूप में राजनीति के अन्तर्गत राज्य और सरकार से सम्बंधित समस्त सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक सामग्री आती है, जैसेराज्य या सरकार के सिद्धांत, विधिनिर्माण, न्याय व्यवस्था, कूटनीति युद्ध और शांति सम्मेलन संविधान आदि। राज्य और सरकार की क्रियाओं का अध्ययन ही राजनीति थी। आधुनिक समय में राजनीति का अर्थ अधिक व्यापक हो गया है। मनुष्य की राजनैतिक क्रियाओं का उसकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक क्रियाओं पर पड़ने वाले प्रभाव तथा अन्तःसम्बंधों का अध्ययन राजनीति का विषय बन गया है। राजनीति शब्द का प्रयोग अप्रतिष्ठित और विकृत अर्थ में भी किया जाता है। प्रायः हम घरेलू राजनीति, कालेज राजनीति आदि शब्दों का प्रयोग इन क्षेत्रों में प्रयुक्त मानवीय बुराइयों के लिए करते हैं।

राजनीति ने शिक्षा को प्राचीनकाल से प्रभावित किया है और दोनों घनिष्ठ रूप से सम्बंधित रहे हैं। प्राचीन समय में संसार के अधिकांश देशों में राजतंत्र था, जिसमें राज्य अपनी प्रजा के लिए शिक्षा की व्यवस्था करता था। पाश्चात्य देश में शिक्षा के द्वारा लोगों को राज्य के लिए तैयार किया जाता था। वहां के नागरिक राज्य को सर्वोपरि मानते थे। उनके मन में बाल्यकाल से ही यह भाव भर दिया जाता था कि ''राजा कुछ भी गलत नहीं कर सकता है। प्रजा को राज्य का अंध अनुयायी बनाना शिक्षा का प्रमुख कार्य था। हमारे देश में वैदिक काल में शिक्षा गुरुकुल में जाकर गुरुओं के आधीन थी। उस पर राज्य का प्रत्यक्ष

हस्तक्षेप नहीं था, लेकिन नीतिगत समस्याओं के समाधान जैसेयुद्ध के लिए सैनिकों को प्रशिक्षित करने में ऋषियों की सहायता राज्य द्वारा ली जाती थी। विश्वामित्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और चाणक्य आदि ने अपनी बुद्धि और विद्या के द्वारा अपने समय की राजनीति को प्रभावित किया था। बौद्धकाल में सम्राट समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त ने भारतीय शिक्षा, संस्कृति और धर्म का प्रसार देश विदेश में किया तथा नालन्दा और विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों के विकास में योगदान दिया।

राजनीतिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र का एक उपविषय है। यह समाज और राजनीति तथा सामाजिक संरचनाओं तथा राजनीतिक संस्थाओं के मध्य परस्पर सम्बंधों का अध्ययन है। राजनीति समाजशास्त्र मात्र राजनीति को प्रभावित या निर्धारित करने वाले सामाजिक कारकों का ही अध्ययन नहीं है, ऐसा इसलिए क्योंकि कई परिस्थितियों में कुछ राजनीतिक संस्थाएं सामाजिक संस्थाओं की भांति अपना अलग व स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती हैं। राजनीतिक समाजशास्त्र की विषयवस्तु के अंतर्गत परम्परा, तर्कपूर्ण वैधता तथा करिश्मा या चमत्कारी शक्ति, आर्थिक विकास और राजनीतिक व्यवस्थाओं में परस्पर सम्बंध, चुनाव और परम्परागत मूल्य, संस्थाएं, वर्ग, जाति, धर्म, बहुसंख्यक व अलपसंख्यक अभिजात वर्ग, सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों की उत्पत्ति, प्रमुखवाद शासन आदि आते हैं। जिस प्रकार शिक्षा की राजनीति शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग है ठीक उसी प्रकार यह राजनीतिक समाजशास्त्र का भी एक महत्वपूर्ण भाग है। यदि हम समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसे समझने का प्रयत्न करेंगे तो पायेंगे कि यह 'शिक्षा का राजनीतिक समाजशास्त्र' ही है।

10.5 भारत में शिक्षा के आर्थिक पक्ष

भारत में आर्थिक विकास में शिक्षा का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हम भारतीय समाज में अर्थव्यवस्था और शिक्षा के परस्पर सम्बंधों को कई रूपों में देख सकते हैं। जैसे

10.5.1शिक्षा का प्रसार एवं जनतंत्र

भारत प्रजातंत्रीय राज्य है, जिसमें सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हैं। सभी नागरिकों को शिक्षा प्राप्ति की सुविधाएं पाने का समान अधिकार है। सरकार नागरिकों को प्राथमिक स्तर की निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने व अन्य स्तरों पर भी शिक्षा सुविधाएं देने को प्रयासरत है। शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश पाने वालों की संख्या बहुत अधिक मात्रा में बढ़ रही है। परिणामस्वरूप कक्षाओं में छात्रों की संख्या तो बढ़ रही है, परन्तु विद्यालयों में सुविधाओं व शिक्षकों की संख्या उस अनुपात में न बढ़ने के कारण शिक्षकविद्यार्थी का संतुलन गड़बड़ा रहा है। इस कारण शिक्षा का स्तर भी गिरता जा रहा है। सामान्य शालाओं की शिक्षा

सस्ती तो है लेकिन उसका स्तर भी निम्न कोटि का है। शैक्षिकअर्थशास्त्री शिक्षा को एक पूंजी बनाना चाहते हैं, लेकिन गिरावट, असंतोष व भीड़भाड़ के सामाजिक वातावरण में दी गई यह शिक्षा किस तरह सही प्रकार का निवेश बन सकती है यह एक विचारणीय प्रश्न है।

10.5.2 उपलब्ध साधनों का उचित उपभोग

भारतीय शिक्षा जगत के शैक्षिकअर्थशास्त्री यह चाहते हैं कि विद्यालयों में जितनी भी सुविधाएं मौजूद हैं जैसेशिक्षा के उपकरण, भवन का अधिक से अधिक उपयुक्त या अनुकूलतम उपभोग किया जाये। यह विचार तो उचित है, लेकिन हमारे समाज के शिक्षकों में से अधिकांश में अपने उत्तरदायित्व के प्रति न तो निष्ठा देखने को मिलती है और न साधनों का पूरापूरा उपयोग करने की इच्छा और क्षमता। अक्सर किसी भी सरकारी विद्यालय में जांच करने चले जाइए, वहां बहुत फर्नीचर, विज्ञान प्रयोगशाला के महत्वपूर्ण यंत्र, कार्यालय में टाईपराइटर, रेडियो आदि कुछ न कुछ खराबी या टूटफूट के कारण बेकार पड़े हुए मिलेंगे। शिक्षा जगत की शिथिल नौकरशाही और शिक्षकों व प्रधानाध्यापकों की लापरवाही के फलस्वरूप इन वस्तुओं को सुधार कर पुनः काम में नहीं लिया जाता। नये सामान को खरीदने की मांगें विद्यालय करते रहते हैं, लेकिन पुराने सामान को सुधारने की ओर ध्यान नहीं देती। इसके कारण शैक्षिकअर्थशास्त्री के सुझाव सामाजिक कारकों के फलस्वरूप अपूर्ण रह जाते हैं। बहुत से विद्यालयों में ज्यादातर सामान आर्थिक वर्ष के अंतिम माह अर्थात् मार्च में खरीद लिया जाता है, जिसका वर्षों तक कोई समुचित उपभोग नहीं होता। फलस्वरूप धन के अपव्यय से प्रति बालक शिक्षा व्यय भी बढ़ जाता है।

10.5.3 शिक्षा के लिए धन का असंतुलित वितरण

भारत में शैक्षिक अर्थशास्त्री इसी बात पर सबसे अधिक बल देते हैं कि अधिकतर धन शिक्षा के ऐसे कार्यक्रमों पर व्यय हो, जिससे आर्थिक लाभ या गुणात्मक फल मिल सके, लेकिन हमारे समाज मे शिक्षा सम्बंधी कार्यक्रमों के धन का वितरण व व्यय अर्थशास्त्रियों की इच्छाओं के अनुसार ही तो नहीं हो पाता है। सरकार में मौजूद प्रभावशाली नेता जहांजहां और जैसे चाहते हैं बहुत कुछ उनके अनुसार ही यह वितरण होता है। राजनीतिक हस्तक्षेप तथा तुष्टिकरण की सामाजिक प्रवृत्तियों को समझे बिना केवल मात्र सैद्धान्तिक शैक्षिक अर्थशास्त्र के नियमों या सुझावों को लागू करना संभव नहीं होता। इस कारण व्यय के बाद भी ऐच्छिक सफलता प्राप्त नहीं होती है।

10.5.4 शिक्षा और धर्म

बहुत से देशी व विदेशी समाजशास्त्रियों का यह मत रहा है कि भारत में हिन्दुओं की धार्मिक परंपरा, जो वर्तमान जगत की अपेक्षा मोक्ष या स्वर्ग पर ही अधिक बल देती है, लोगों को आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने से

रोकती है। थोड़ासा कमा लेने पर ये लोग और परिश्रम नहीं करना चाहते, क्योंकि हिन्दू संस्कृति सादा जीवन को उत्तम मानती है। समयसमय पर अनेक अर्थशास्त्री भी ऐसा मत व्यक्त करते रहते हैं, परन्तु समाजशास्त्री ऐलेक्स इंकल्स, ए.के. सिंह व अन्य कुछ सामाजिक वैज्ञानिकों के हाल के अध्ययनों व लेखों से यह ज्ञात हुआ है कि यह गलत भ्रम है। जैनी, भारतीय यहूदी, सिख, मारवाड़ी, सनातनी लोग बहुत अधिक धार्मिक होने के बावजूद भी आर्थिक उत्पादन को बढ़ाने में बहुत अधिक प्रयत्नशील रहते हैं तथा इसके लिए शिक्षा के साधन का अधिकाधिक उपयोग करना चाहते हैं।

10.5.5 शिक्षा द्वारा आर्थिक विकास में आने वाले बंधन

शिक्षा ऐसे कई साधनों या कारकों में से एक हो सकती है जिससे सामाजिक पद या स्तर में वृद्धि करना संभव है। भारत में यह बात किसी सीमा तक सही भी है। शिक्षा समाजशास्त्रीय प्रो. सी. ए. एंडरसन के अनुसार यह समझना एक भूल है कि शिक्षा सामाजिक उत्थान लाने में अवश्य ही बहुत सहायक होती है क्योंकि हमारे देश में आज भी कई ऐसे शिक्षित व्यक्ति हैं जो जाति, नातेदारी, सांप्रदायिकता के परंपरागत कारकों के बंधनों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाते तथा अपने गांव, कस्बे या प्रान्त को छोड़कर बाहर जाना नहीं चाहते। अनेक स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी नौकरी या आर्थिक विकास नहीं कर पातीं, क्योंकि प्रचलित परम्परागत सामाजिक मर्यादा उन्हें विवाह करने के लिए बाध्य करती है और उन्हें अपने संरक्षकों से दूर जाकर नौकरी या धंधा करने की अनुमति नहीं देती है।

10.5.6 शिक्षा और रोजगार

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि जो व्यक्ति जितना अधिक पढ़ालिखा है वो उतना ही अधिक कमाता है। एक सीमा तक यह सही है, क्योंकि हमारे देश में प्रायः उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति स्कूली शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों से अधिक कमाते हैं, लेकिन हाल के वर्षों में हुई इंजीनियरों, डॉक्टरों, शिक्षकों, समाजवैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों आदि की बेरोजगारी को यदि ध्यान में रखकर देखा जाये तो हम यह पायेंगे कि आज के अशिक्षित, सब्जी बेचने वाले, ठेला चलाने वाले, अल्पशिक्षित मोटर मिस्त्री, मकान बनाने वाले मिस्त्री, फर्नीचर बनाने वाले आदि सरकारी कार्यालयों के मुख्य लिपिकों, सहायकों, पाठशालाओं के ग्रेजुएट व पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षकों से कहीं अधिक कमा रहे हैं। इसलिए हमारे देश के शैक्षिक अर्थशास्त्रियों को यह ध्यान में रखना होगा और ऐसे सुझाव प्रस्तुत करने होंगे जो इस विसंगति को दूर कर सके।

10.6 भारत में शिक्षा के राजनीतिक पक्ष

भारतीय समाज में शिक्षा और राजनीति का परस्पर सम्बंध है। जैसे –

10.6.1 शिक्षा और अन्तर्संस्थात्मक राजनीति

भारत एक लोकतंत्रात्मक देश है। इसमें सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। देश का कोई एक राजधर्म नहीं है। संविधान ने धर्म के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं बरतने का संकल्प किया है, लेकिन अल्पसंख्यकों तथा पिछड़े समुदायों को विशेष संरक्षण, प्रोत्साहन व सहायता देना भी अपना कर्तव्य घोषित किया है, किन्तु भारत की परंपरागत सामाजिक संस्थाओं में जातिप्रथा बहुत महत्वपूर्ण है। हम देखते हैं कि गांवों और कस्बों में कुछ प्रभावी जातियां होती हैं, अर्थात एक स्थानीय बस्ती में परंपरागत रूप से कोई जाति विशेष बहुत अधिक शक्तिशाली या प्रभावपूर्ण होती है।

इसलिए जब हम भारतीय शिक्षा और राजनीति के सम्बंध पर विचार करना आरंभ करते हैं तो हमें सबसे पहले उस सामाजिक संदर्भ को समझना आवश्यक होता है, जिसमें आज शिक्षा प्रदान की जा रही है। परंपरागत कारकों में जाति, प्रभावी जाति व धर्म, शिक्षा संस्थाओं पर अपना प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव डालती हैं। स्थानीय जनता से शाला के लिए भी चंदा उगाहने या अन्य प्रकार का सहयोग प्राप्त करने में कौन प्रधानाध्यापक सफल होगा, यह बहुत कुछ उसकी जाति व उपजाति पर निर्भर होता है। आज प्रधानाध्यापक व शिक्षकों को जातिगत आधारों पर कार्य कर रही राजनीति के कई रूपों का सामना करना पड़ता है। जातिगत भेदभाव ने आज के राजनीति प्रधान युग में राजनीतिक रूप धारण कर लिया है। यदि किसी क्षेत्र में किसी विशेष जाति के शिक्षक, उपमंत्री या मंत्री बने हुए हैं तो कई प्रत्यक्ष मामलों में यह देखने में आया है कि वह अपनी जाति की शिक्षा सुविधाओं की अभिवृद्धि में अधिक रुचि दिखलाते हैं और उसकी जाति के विद्यार्थी अन्य क्षेत्रों में अपनी जाति के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक स्वतंत्र, उच्च या साहसपूर्ण व्यक्तियों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। कई बार जाति के आधार पर नई पाठशालाएं खोली जाती हैं, शिक्षक के स्थानांतरण व नियुक्तियां होती हैं, विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां व अन्य सुविधाएं दिलवाई जाती हैं तथा शिक्षा सम्बंधी मामलों में कई अन्य प्रकार के राजनैतिक हस्तक्षेप व घूसखोरी होती है।

अपनी जाति के लोगों का पक्षपात करने की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर कई विद्यालय निरीक्षकों, विश्वविद्यालयों व माध्यमिक शिक्षा बोर्डों के अध्यक्षों, सचिवों व सदस्यों ने निजी संस्थाओं को मान्यता या सहायता दिलवाने में विशेष पक्षपात किया है। कई बार शिक्षा विभागों के मंत्री, उपमंत्री, शिक्षा निदेशक व निरीक्षक अपनीअपनी जाति के लोगों को ही नौकरी में लगाने, उत्तम स्थानों पर शिक्षा संस्थाओं में स्थानान्तरित करने तथा उनको परीक्षा में बैठने देने व अन्य सुविधाएं दिलवाने में बहुत अधिक व खुलेआम पक्षपात करते हैं। संस्कृतिकरण की प्रवृत्ति का भी शिक्षा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। भारतीय शिक्षा की राजनीति के सही स्वरूप को जानने में ये परंपरागत कारक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार हम देख

सकते हैं कि भारतीय शिक्षा के राजनीतिक संदर्भ में कई संस्थाओं, कारकों, व्यवस्थाओं, समूहों आदि की पारस्परिक सांठगाठ होती है। उनको दृष्टिगत किए बिना देश की शिक्षा और राजनीति के वास्तविक परस्पर सम्बंध को समझना असंभव है।

10.6.2 शिक्षा संस्थाओं की संस्थात्मक राजनीति

भारतीय शिक्षा संस्थाओं की आन्तरिक राजनीति, गुटबाजी, संघर्ष व पारस्परिक रागद्वेष की प्रवृत्तियों का पक्ष भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है। शिक्षकों, प्रधानाध्यापकों, प्रधानाचार्यों व विद्यार्थियों के पारस्परिक सम्बंधों में नियुक्ति, प्रवेश, परीक्षाफलों, ट्यूशनों, कार्यवितरण, पदोन्नति आदि विषयों को लेकर कई प्रकार के दल बन जाते हैं जो बाहरी राजनैतिक दलों व प्रशासनिक नेताओं से गठबंधन कर लेते हैं और शिक्षा प्रदान करने के कार्य में कई प्रकार के गतिरोध उत्पन्न करते हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों की आन्तरिक राजनीति पदोन्नतियों, परीक्षक व विभागाध्यक्ष बनाने के मामलों को लेकर निरन्तर लड़ाईझगड़े करने वाले छोटेछोटे गुट बन जाते हैं। ये प्रायः व्यक्तिगत स्वार्थ तथा बिना निष्ठापूर्वक सेवा किए हुए संस्था में अपना प्रभाव बढ़ाने की इच्छा रखते हैं। ये परंपरागत कारकों का लाभ उठाकर अपने संकुचित उद्देश्यों में सफल होना चाहते हैं।

इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि हमारी शिक्षासंस्थाओं में ऊँचनीच, जातिगत भेदभाव और सामाजिक स्तरण की जड़ें इतनी मजबूत हो गई हैं कि कई प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष अपने अधीन कार्य कर रहे शिक्षकों, शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों आदि के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करते हैं। हमारे बहुत से विश्वविद्यालयों के बहुत से विभागाध्यक्ष, प्राध्यापक व महाविद्यालयों के प्राचार्य कोई षोध अध्ययन नहीं कर रहे हैं, लेकिन अपने उच्च पदों की महत्ता के फलस्वरूप विभिन्न शोधसंस्थानों व विभागों से शोध करने, पुस्तकें लिखने व विशेषज्ञ सम्मतियां देने के नाम पर अनुदान की बड़ीबड़ी धनराशियां एकत्रित करने और उसका कुछ भाग स्वयं हड़प कर शेष अपने नौसिखिया विद्यार्थियों व चापलूस सहायकों में वितरित कर देते हैं। फलस्वरूप जो विद्यार्थी शोध या उच्च अध्ययन करने के लिए वास्तव में योग्य व इच्छुक होते हैं उन्हें तो अपनी राजनीतिक असंबद्धता या प्रभावहीनता के कारण आवश्यक अनुदान या सहायता नहीं मिल पाती। जो अयोग्य लेकिन बड़ेबड़े प्राध्यापकों के उपग्रह होते हैं उनको धन, पद व प्रभाव सब कुछ मिलता जाता है। इससे आपसी संघर्ष या ईर्ष्याद्वेष जैसी भावनाओं का जन्म होना स्वाभाविक है, जो हमारी शिक्षा जगत के भविष्य के लिए हानिकारक है। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय शिक्षा जगत में कितनी विसंगतियां विद्यमान हैं। इसलिए हमें राजनीति और शिक्षा सम्बंधी सैद्धांतिक महत्व के प्रश्नों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

10.6.3 राजनीति और शिक्षा की प्रभावोत्पादकता

एक प्रजातंत्रीय देश में शिक्षा के विकास व प्रभावोत्पादकता में राजनीति को बहुत सहायक सिद्ध होना चाहिए। जब तक हमारे राजनीतिज्ञ, संसद सदस्य तथा महत्वपूर्ण बुद्धिजीवी तथा अन्य प्रभावशाली नागरिक शिक्षा सम्बंधी विषयों व समस्याओं को गहरे रूप में समझने तथा उनकी सही प्रकार से समालोचनाएं करना आरम्भ नहीं करेंगे, तब तक शिक्षा सुविधाओं के समुचित व न्यायपूर्ण वितरण, भ्रष्ट प्रवृत्तियों के निराकरण तथा शिक्षा के स्तरों में सुधार होना असंभव है। ऐसे महत्वपूर्ण शक्ति सम्पन्न जन नेताओं को शिक्षा जगत की समस्याओं के सही चित्रण से अवगत कराने का कार्य शिक्षकों का है। जब तक शिक्षक राजनैतिक तत्वों से पृथक रहेंगे, उनका कार्य एक शक्तिशाली व्यवसाय का रूप धारण नहीं कर सकता तथा उनके कार्य को हमारे प्रजातंत्रीय समाज में समुचित आदर का स्थान नहीं मिल सकता, लेकिन शिक्षकों को राजनीति में प्रवेश करने पर एक भिन्न प्रकार का गौरवशाली व संयत व्यवहार करना चाहिए। उन्हें मजदूरसंघों के सदस्यों की भांति हड़तालों, घेरावों व अन्य अनैतिक कार्यों में भद्दे ढंग से भाग लेने के स्थान पर स्पष्टवादिता, लेकिन संयम का सहारा लेना चाहिए। शिक्षकों को सामाजिक संघर्षों के धनात्मक अथवा लाभदायक पक्ष को भी समझना चाहिए। उन्हें विविध विषयों व समस्याओं पर अपनीअपनी स्वतंत्र सम्मतियां बनाने व व्यक्त करने वाले तथा लचीले व्यक्तित्व रखने वाले समझदार आधुनिक कार्यकर्ता बनाने चाहिए, राजनीतिज्ञों के चापलूस बनने के स्थान पर स्पष्ट निडर व प्रबुद्ध नागरिक की भांति कार्य करने पर अवश्य ही शिक्षक राजनीतिज्ञों से सम्माननीय रूप से सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। राजनीति में कुशल प्रधानाध्यापक अपने क्षेत्रों में स्वस्थ सामाजिक प्रतियोगिता की भावनाएं प्रसारित करके अपने विद्यालय के लिए जनता के विभिन्न वर्गों व समूहों से अधिकाधिक जनसहयोग प्राप्त कर सकते हैं।

10.6.4 शिक्षा और विद्यार्थियों का राजनीतिक समाजीकरण

शिक्षा और राजनीति का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि शिक्षा राजनैतिक व्यवस्था को बनाए रखने व उसको स्वस्थ प्रकार से विकसित होने में किस प्रकार योगदान दे सकती है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उत्तम नागरिकों का निर्माण किया जाये। उत्तम नागरिकों से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है जो अपने देश की ही नहीं, अपितु विदेशों की भी राजनीतिक समस्याओं में रुचि, समझ तथा स्वतंत्र समझ रखते हों, जो अपने राजनैतिक अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सजग हों, जो राजनीतिज्ञों और अवांछनीय तत्वों के हाथों की कठपुतलियां न बनें, अपितु अपनी बुद्धि, योग्यता तथा उत्तम चरित्र से अपने देश के हितों को सर्वोपरि रखते हुए कार्य करें। यह शिक्षा का ही कार्य है कि वह अपने पाठ्यक्रम व अन्य क्रियाकलापों द्वारा विद्यार्थियों का समुचित रूप से राजनीतिक समाजीकरण करे। डेनियल लर्नर ने

'The Passing of Traditional Society' नामक अपने विख्यात ग्रन्थ में इस बात पर बहुत अधिक बल दिया है कि एक आधुनिक नागरिक का व्यक्तित्व बहुत गतिशील, सजग, विभिन्न विषयों पर अपनी सम्मतियां देने वाला, दूसरों की आकांक्षाओं व परस्थितियों को तुरन्त समझकर कार्य करने वाला तथा तर्कपूर्ण होना चाहिए। ऐसे आधुनिक नागरिकों का निर्माण करने के लिए भारत में शिक्षा व्यवस्था को सुधारना और आधुनिक बनाना होगा। केवल मात्र नागरिक शास्त्र और भारतीय संविधान के बारे में कुछ बातें बता देने व कानून के अनुसार रहने को बाध्य करने से ही ऐसे नागरिकों को तैयार नहीं किया जा सकता।

10.7 सारांश

इस इकाई में शिक्षा की अहमियत को बताते हुए आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को बताया गया है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसके जीवन के महत्वपूर्ण कारकों में शिक्षा शामिल है। आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से वह अछूता नहीं रह सकता है। शिक्षा वह कारक है जो आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था करती है। साथ ही साथ आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था भी शिक्षा को वैसे ही प्रभावित करते हैं। शिक्षा के माध्यम से लोगों को शिक्षित करके इस काबिल बनाया जा सकता है कि वो अपना व अपने परिवार का भरण पोषण के साथसाथ समाज में लोगों को प्रेरित करके देश के विकास में अहम योगदान प्रदान कर सकें। शिक्षा राजनीतिक पक्ष को भी प्रभावित करती है। राजनीति भी शिक्षा को प्रभावित करती है। शिक्षित व्यक्ति ही राजनीति की सही शक्तियों का इस्तेमाल उचित दिशा में कर सकता है और राजनीति ऐसी शक्ति है जो शिक्षा को सभी लोगों तक बिना किसी भेदभाव के लोगों तक समान रूप से पहुंचा सकती है। शिक्षण संस्थानों में भी राजनीतिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी भी देश का आर्थिक एवं राजनीतिक विकास शिक्षा पर ही निर्भर है। शिक्षा सर्वांगीण विकास का लक्ष्य निर्धारित करती है।

10.8 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 भारत में शिक्षा और आर्थिक व्यवस्था के सम्बंध और प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2 भारतीय शिक्षा और राजनीति के सम्बंधों की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न 1 अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है

(अ) धन (ब) वस्तु (स) कारखाना (द) शिक्षा

प्रश्न 2 द पासिंग ऑफ ट्रेडीशनल सोसायटी के लेखक कौन हैं?

(अ) कार्ल मार्क्स (ब) मैक्स वेवर (स) डेनियल लर्नर (द) इमाइल दुखीम

प्रश्न 3 सामाजिक शिक्षा का लक्ष्य किस प्रकार का विकास है?

(अ) सर्वांगीण (ब) शारीरिक (स) बौद्धिक (द) धार्मिक

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ

1. (द)
2. (स)
3. (अ)

10.10 संदर्भ सूचीः

- मिश्रा, डॉ0 ऊषा; शिक्षा का समाजशास्त्र; अनुभव पब्लिशिंग हाऊस; इलाहाबाद 2014।
- लाल, प्रो0 रमन बिहारी; श्रीमती सुनीता; शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय आधार; राज प्रिन्टर्स; मेरठ 2022।
- सिंह, जे0पी0; समाजशास्त्रः अवधारणाएं एवं सिद्धांत; पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड; दिल्ली 2013।
- मदान, पूनम; पाण्डेय, राम शकल; शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार; अग्रवाल पब्लिकेशन्स; आगरा 2019।
- www.lokjivan.in
- त्यागी, जी.एस.डी.; शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार; अग्रवाल पब्लिकेशन्स; विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 2020।
- www.vikaspedia.com

इकाई –11 शिक्षा बहुलवाद और बहू–संस्कृतिवाद

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 शिक्षा में बहुलवाद का विश्लेषण

11.3 बहु–संस्कृतिवाद की संकल्पना

11.3.1 बहु–संस्कृतिवाद के प्रकार

11.3.2 बहु–संस्कृतिवाद की विशेषताएँ

11.4 बहु–संस्कृतिक वास्तविकता और अनिश्चित

11.5 अप्रवासी विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक का सांस्कृतिक दृष्टिकोण

11.6 शिक्षकों के काम के लिए बहु–संस्कृतिवाद की चुनौती

11.7 राजनीतिक एवं शैक्षिक बहुलवाद

11.8 सारांश

11.9 बोध प्रश्न

11.10 सन्दर्भ सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई मे शिक्षा बहुलवाद और बहु–संस्कृतिवाद के विषय मे जानकारी प्राप्त करेगे ।

- शिक्षा और बहुलवाद को विस्तृत जान सकेंगे।
- बहु–संस्कृतिवाद के प्रकार और विशेषताओं को जानेंगे।
- अप्रवासी विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को समझेंगे।
- शिक्षकों के काम के लिए बहु–संस्कृतिवाद की चुनौती के दृष्टिकोण को समझेंगे।
- राजनीतिक एवं शैक्षिक बहुलवाद की शब्दावली को समझेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हम इस मुद्दे से संबोधित होंगे कि एक उदारवादी लोकतांत्रिक समाज के भीतर रहते हुए एक शिक्षा व्यवस्था भिन्न–भिन्न प्रकार के मूल्यों और जीने के तरीकों के लिए किस तरह सम्भावना और स्थान बना सकती है। इस मुद्दे को ले कर विभिन्न व्यापक दृष्टिकोणों का जायजा लेने के बाद हम अपनी चर्चा को मूल्य–विविधता, नागरिकता और स्वायत्तता से संबंधित दृष्टिकोणों के साथ संबद्ध करेंगे। इसके बाद हम इस मुद्दे पर कुछ समकालीन उदारवादी प्रतिक्रियाओं पर नजर डालते हैं और सामुदायिकता वाद या समुदाय– विशेष के मूल्यों को सार्वजनिक मूल्यों पर प्राथमिकता दिए जाने के मुद्दे पर चर्चा करेंगे। अन्त में एक केस स्टडी के तौर पर हम युनाइटिड किंगडम में धार्मिक स्कूलों से संबद्ध बहस पर एक विस्तृत नजर डालते हुए दर्शाएंगे कि यह कितना जटिल मुद्दा है। उसके बाद इसके समाधान के लिए अपने सुझाव देगें। हमने धार्मिक स्कूलों की शिक्षा को इसलिए चुना है क्योंकि यह संबद्ध मुश्किल मुद्दों को उदाहरण के तौर पर दर्शाती प्रतीत होती है और इसलिए भी कि इस सवाल की समकालीन प्रासंगिकता एक से अधिक देशों में हैं।

शैक्षिक प्रणालियों के लिए सबसे बड़ी वर्तमान चुनौतियों में से एक बहुलवाद का उदय है, जो सांस्कृतिक ढांचे के विखंडन के कारण होता है जिस पर आधुनिकता के अंत तक समाजीकरण की जड़ें जमी हुई हैं। जैसे–जैसे समाजीकरण की प्रक्रिया अधिक बहुकेन्द्रित होती जाती है, विविधता के प्रबंधन में गंभीर समस्याएं उत्पन्न होती हैं। बहुलवाद न केवल अपनी जटिलता के कारण हर सामाजिक व्यवस्था की एक विशेषता का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि विविधताओं के बीच 'लोकतांत्रिक संयोजन' का एक सिद्धांत भी हैः इस प्रकार,

यह बहुलताओं का एक सरल सह–अस्तित्व नहीं है, बल्कि बहुलता को एकीकृत करने के लिए एक दिया गया विकल्प भी है, जिसका अर्थ है हर तरह के अद्वैतवाद एकाधिकार पर काबू पाना जो लोगों को आत्मसात करने या वैयक्तिकरण की ओर ले जाता है। शिक्षा में बहुलवाद का अर्थ है विभिन्न विषयों एकल या सामूहिक की कार्रवाई, विभिन्न अनुभूति व्याख्यात्मक, भाषाएँ के संयोजन की संभावना, एकात्मक के भीतर विभिन्न मूल्य विचारधाराएँ, सोचने के तरीके, विश्वास और धर्म की खुली अभिव्यक्ति।

11.2 शिक्षा में बहुलवाद का विश्लेषण

शैक्षणिक प्रणालियों के लिए सबसे बड़ी वर्तमान चुनौतियों में से एक बहुलवाद का बढ़ना है, जो उस सांस्कृतिक ढांचे के विखंडन के कारण है जिस पर आधुनिकता के उत्तरार्ध से समाजीकरण की जड़ें जमी हुई हैं। जैसे–जैसे समाजीकरण की प्रक्रिया अधिक बहुकेन्द्रित होती जाती है, विभिन्न स्तरों पर विविधता के प्रबंधन में गंभीर समस्याएं उत्पन्न होती हैं, सामाजिक एजेंट छात्र, शिक्षक, अभिभावक और स्कूल प्रबंधक के साथ–साथ नीति निर्माताओं और प्रणालियों निजी और सार्वजनिक सेवाएँ, स्थानीय नेटवर्क और सरकार के स्तर पर भी । विविधता के कई प्रकार दांव पर लगे हैं, यूरोप में हर जगह प्रवास प्रवाह के कारण छात्रों के बीच धार्मिक और भाषाई मतभेद बढ़ रहे हैं, लेकिन सामाजिक–आर्थिक मतभेदों के साथ–साथ लिंग और आयु के अंतर भी विविधता के प्रबंधन में मुश्किलें पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लगातार बढ़ती पहचान और मिश्रित सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की तस्वीर का सामना करने वाली मुख्य सामाजिक चिंता यह है कि शत्रुता और विदेशी लोगों के प्रति घृणा की भावनाएँ और दृष्टिकोण विशेष रूप से विविधता के उच्चतम संकेन्द्रण वाले क्षेत्रों में हो सकते हैं। हालाँकि, कुल मिलाकर, नस्लवादी विचारधाराओं के बढ़ने का स्थान नहीं है, फिर भी यह असहिष्णुता के कमोबेश निहित और नकारात्मक प्रभावों का सामना कर सकता है, दोनों सहकर्मी से जातीय संबंधों के संदर्भ में, और जातीयता, राष्ट्रीयता या अन्य संयुक्त मतभेदों के आधार पर छात्रों के प्रति भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण के संदर्भ में देखा जा सकता है। लेकिन स्कूली शिक्षा में बहुलवाद की जुड़े मुद्दे बहुआयामी हैं और आकार में अंतरक्रियात्मक विकारों के मामले तक सीमित नहीं हैं। वे इससे भी आगे जाती हैं क्योंकि इसमें न केवल शिक्षा की मांग के पक्ष पर विचार किया जाना चाहिए बल्कि आपूर्ति के पक्ष पर भी विचार किया जाना चाहिए चूंकि बहुलवाद शिक्षा का एक मुख्य मूल्य है, इसलिए इसका उद्देश्य बहुलवादी शैक्षिक मांग को समझना और उसे प्रभावी और समान आपूर्ति में बदलना चाहिए, जिसमें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्र शामिल हों। इस शब्द के सामान्य अर्थ को देखते हुए, बहुलवाद का तात्पर्य लोकतांत्रिक संतुलन के आधार के रूप में विविध और प्रतिस्पर्धी हितों के अस्तित्व से है, जो व्यक्तियों द्वारा लक्ष्य प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रकार यह न केवल सामाजिक प्रणालियों में जटिलता के परिणाम का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि आधुनिक संस्थानों और एजेंसियों को बेहतर ढंग से समझने के

लिए एक वर्णनात्मक सिद्धांत है, विविधताओं के बीच के अर्थ में लोकतंत्र का एक मानक सिद्धांत है। यह बहुलता के सह–अस्तित्व से कहीं अधिक कुछ दर्शाता है, बहुलता को एकीकृत करने के लिए एक दिया गया विकल्प है, जो पुष्टि करता है।

बहुलवादी संस्कृति में अद्वितीय समूह न केवल साथ–साथ रहते हैं, बल्कि अन्य समूहों के गुणों को भी प्रमुख संस्कृति में होने योग्य गुणों के रूप में मानते हैं। इसके अलावा, बहुलवादी सामाजिक सम्बन्ध में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूहों के बीच आत्मसात की अपेक्षा के बजाय मजबूत एकीकरण की अपेक्षाएँ होती हैं। वास्तव में, आत्मसात करने से मतभेदों और अल्पसंख्यक समूहों के मूल्यों की उपेक्षा होती है और प्रमुख समूह द्वारा सांस्कृतिक आधिपत्य स्थापित होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के मामले में, मेल्टिंग पॉट विचारधारा के प्रभुत्व में, स्कूलों ने अप्रवासियों के बच्चों को उनकी संस्कृति के प्रति अवमानना सिखाई और उन्हें आत्म–अलगाव और आत्म–अस्वीकृति का अनुभव करने के लिए मजबूर किया। जैसा कि स्कूली शिक्षा के कई विशेषज्ञ जानते हैं, शिक्षा में आत्मसात करने वाले दृष्टिकोण का जोखिम कई आंतरिक कारकों के लिए बहुत बड़ा और व्यापक है शिक्षकों के लिए एक मुख्य कार्य के रूप में एक सांस्कृतिक माना जाता है कि अद्वितीय विरासत का हस्तांतरण, विषम स्कूली वातावरण के लिए चिंता जो सीखने के लिए कम प्रभावी प्रतीत होती है, एक कमजोर सांस्कृतिक क्षेत्र के अलगाववादी परिणामों का डर, और इसी तरह। इस प्रकार बहुलवाद, भले ही इसे स्कूल प्रणाली के औपचारिक इरादे के रूप में माना जाता है, अक्सर एक अभ्यास की तुलना में एक मात्र आत्मसात विरोधी विचारधारा होती है, विविधताओं के बीच एक प्रभावी संयोजन की एक सच्ची वास्तविक खोज बहु–संस्कृतिवाद का मुद्दा न केवल सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के एकमात्र समाजशास्त्र द्वारा आगे बढ़ाया गया है, बल्कि दार्शनिक, मानवशास्त्रीय और राजनीतिक दृष्टिकोणों को मिलाकर भी आगे बढ़ाया गया है, विशेष रूप से बहुसंख्यक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के बीच संबंधों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, साथ ही सामाजिक सामंजस्य की समस्याओं के समाधान पर भी ध्यान दिया गया है। एक कट्टरपंथी दृष्टिकोण के अनुसार संस्कृति पर ध्यान केंद्रित करने से समाज पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रतीत होती है, इस अर्थ में कि किसी भी सामाजिक समस्या को संस्कृति या पहचान की समस्या के रूप में फिर से तैयार किया जाता है।

हम सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अपने बारे में बात करते हैं जिसका अर्थ है कि हम लोगों को विशिष्ट जीवन शैली के आधार पर परिभाषित करते हैं, मूल संस्कृतियों से शुरू करते हैं, जैसा कि आप्रवासन और बहु–संस्कृतिवाद से संबंधित समस्याओं से स्पष्ट रूप से पता चलता है, बहु–संस्कृतिवाद के विभिन्न दृष्टिकोणों में से, कुछ पर विचार किया जाना चाहिए जो संभावित समाधानों के लिए परिदृश्य तैयार करते हैं।

पहले, उदारवाद, जिसके अनुसार अल्पसंख्यकों को उन अधिकारों द्वारा पहचाना जाना चाहिए जो उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं को लागू करने के लिए आवश्यक हैं, जबकि सभी समुदाय के सदस्यों द्वारा साझा किए गए मूल्यों के ढांचे में व्यक्तित्व को शामिल किया जाना चाहिए। दूसरा, सामुदायिक दृष्टिकोण जो इस बात पर बहस करता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में विशेष अधिकारों, समूह और इसकी अलग पहचान के लिए सुरक्षा और समर्थन के रूपों की मान्यता आवश्यक है; आलोचनात्मक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक पहचान पर एक संस्थागत तंत्र के रूप में केंद्रित है जो शक्ति की गतिशीलता को विनियमित करता है। शैक्षिक क्षेत्र में, बहु–संस्कृतिवाद को अक्सर अन्य सामाजिक समस्याओं के संकेतक के रूप में लिया जाता है, विशेष रूप से अवसरों की असमानता से जुड़ी समस्याओं के रूप में सांस्कृतिक और प्रणालीगत एकीकरण को याद दिलाता है, जिसे शैक्षिक ताकतें स्कूलों और समाज के बीच गतिशील अंतर–संबंध के ढांचे में प्राप्त करना चाहती हैं। शैक्षिक संदर्भों जैसे कि भीतर प्रवास का अनुभव करने वाले समुदायों की उपस्थिति राष्ट्रीयता, जातीयता, नस्ल, भाषा, संस्कृति और धर्म आदि जैसे अपेक्षाकृत नए वर्गीकरण मानदंडों के आधार पर सामाजिक भेद की एक रेखा खींचती है। स्कूल के अनुभव के भीतर, प्रवास के परिणामस्वरूप बहु–संस्कृतिवाद आजकल मात्रात्मक दृष्टि से एक दृश्यमान घटना है, जैसे कि अप्रवासी छात्रों की घटना दर और एक ही कक्षा या संस्थान में मौजूद विभिन्न राष्ट्रीयताओं की संख्या। यह स्कूल के समूह के जातीय आधार में बदलाव को बढ़ावा दे सकता है, लेकिन इटली में ऐसा नहीं है जहाँ सभी शिक्षकों और अधिकारियों के पास नागरिकता होनी चाहिए और नागरिकता प्राप्त करने के लिए अतीत में बहुत कम अप्रवासी इटली आए थे। स्कूल में बहु–संस्कृतिवाद के अन्य दृश्यमान ट्रैक चार मुख्य समस्याग्रस्त मुद्दों को विनियमित करने के लिए मानव स्वभाव हैं। स्कूल में प्रवेश के लिए अप्रवासियों के लिए आवश्यक राजनीतिक स्थिति; सर्वोत्तम शिक्षण परिणामों के लिए समान वर्ग संरचना और अन्य उपाय; बहु–संस्कृतिक और अंतर–सांस्कृतिक शिक्षा के अर्थ में पाठ्यक्रम के नवाचार; विविधता प्रबंधन के लिए शिक्षक शिक्षा। ये सभी कानूनी व्यवस्थाएँ बहुसंस्कृतिवाद के किसी एक दृष्टिकोण के साथ कमोबेश सुसंगत होकर काम कर सकती हैं, या वे सामाजिक अभिनेताओं के व्यवहार को उनकी सचेत सहमति से परे प्रभावित कर सकती हैं।

11.3 बहु–संस्कृतिवाद की संकल्पना

बहु–संस्कृतिवाद ऐसी आस्थाओं एवं व्यवहारों की पद्धति है जो अपनी सामाजिक स्थिति के कारण लोगों में विविधता को मान्यता एवं महत्व देती है। यह विविध समूहों एवं समाज के योगदान को सम्मान देती है, चाहे ये मुख्यधारा में न भी हो और यह सांस्कृतिक अंतर्विष्ट समाज में इनके सत्त् योगदान को भी बढ़ावा देती है। विद्यालयों में, बहु–संस्कृतिवादी शिक्षा एवं पाठ्यचर्या निर्माण के संबंध में सहज दृष्टिकोण है जो समाज के लिए विविध समूहों के योगदानों की पुष्टि करती है और उन्हें सम्मान देती है और यह समाज के इन

योगदानों को समूचे अनुदेशात्मक कार्यक्रम का भाग बनाती है जो निरंतर बदलते समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और जो सभी संबंधित व्यक्तियों के वैयक्तिक और सामाजिक विकास के प्रति संवेदनशील है ।

बहु–संस्कृतिवाद विभिन्न जातियों, राष्ट्रीयताओं, भाषाओं, धर्मों, वर्गों, लिंग आदि का एक सम्मेलन है; यह एक ऐसा दृष्टिकोण है कि विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के समान अधिकार हैं। यह एक आम राजनीतिक संस्कृति को मानने की ओर उन्मुख है जिसमें सभी भाग ले सकते हैं।

11.3.1 बहु–संस्कृतिवाद के प्रकार

- **उदार बहुसंस्कृतिवाद :–** व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पसंद का प्रयोग करने और राज्य के किसी भी हस्तक्षेप के बिना अपने निजी जीवन जीने के लिए स्वतंत्र हैं। इसके अलावा, व्यक्ति अपनी भाषा और धार्मिक पहचान व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र हैं।

- **बहुलवादी बहुसंस्कृतिवाद :–** यह शब्द उन मूल्यों की बहुलता को संदर्भित करता है जो अन्य संस्कृतियों में विद्यमान हैं; बहुलवादी संस्कृति में रहने का अर्थ है विभिन्न संस्कृतियों के सभी मूल्यों का सम्मान करना, चाहे वे कितने भी भिन्न हों।

- **विश्वव्यापी बहु–संस्कृतिवाद–** इस प्रकार का बहु–संस्कृतिवाद वैश्वीकरण के सांस्कृतिक प्रभाव का परिणाम है। इस शब्द के परिणामस्वरूप संस्कृति की गतिशीलता को मान्यता मिली है।

11.3.2 बहु–संस्कृतिवाद की विशेषताएँ

1. विभिन्न जातीयताओं और राष्ट्रीयताओं के लोग एक ही समुदाय में एक साथ रहते हैं।
2. बहु–संस्कृतिक समुदाय में लोग विविधता को महत्व देते हैं, शिक्षा तक उनकी पहुंच समान होती है, तथा चर्चा में शामिल होने के लिए सभी के लिए समावेशिता होती है।

11.4 बहु–सांस्कृतिक वास्तविकता और अनिश्चित

पिछले बीस वर्षों में शिक्षा प्रणाली ने वैश्विक और बहु–संस्कृतिक आयाम में खुलने के लिए बहुत दबाव का सामना किया है, मुख्य रूप से अप्रवासी छात्रों की उपस्थिति में वृद्धि के कारण। दो बिंदु हैं जो इटली में बहु–संस्कृतिक स्कूलों पर सार्वजनिक बहस की विशेषता रखते हैं समानता और समान अवसर को बढ़ावा देना संवैधानिक सिद्धांतों और सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के विषम स्तरों का सामना करने वाली शिक्षा की

लोकतांत्रिक रूपरेखा का सम्मान कैसे करें और एक–सांस्कृतिक और एक–धार्मिक शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक और धार्मिक मतभेदों की सराहना कैसे करें। इन प्रक्रियाओं के संयोजन से उत्पन्न होने वाले दबाव, जिन्हें कभी–कभी विरोधियों के रूप में माना जाता है, शैक्षिक प्रथाओं पर कई परिणाम डालते हैं, दोनों प्रतीकात्मक सांस्कृतिक विरासत के संचरण और पाठ्यक्रम के नवीनीकरण के संबंध में और संगठनात्मक स्तर यानी विदेशी छात्रों की उपस्थिति के लिए उन्हें प्राप्त करने, सीखने में उनका समर्थन करने, स्कूल से काम करने के संक्रमण के सभी समान अवसर देने और कई अन्य के लिए अज्ञात संगठनात्मक समाधानों की आवश्यकता हो सकती है। यह लगभग स्पष्ट है कि शिक्षकों को बहु–संस्कृतिक छात्र आबादी की वास्तविकता के साथ एक ही समय में और समान प्रभावों के साथ समाजीकृत नहीं किया जाता है। काम की जगह, संस्थान का प्रकार और पेशेवर इतिहास अंतर पैदा करता है। हालाँकि मानक ढाँचा, जो निजी और सरकारी दोनों स्कूलों को नियंत्रित करता है और नस्लीय भेदभाव को रोकने में शिक्षकों द्वारा निभाई गई भूमिका पर जोर देता है, सभी स्कूल पेशेवर सामाजिक न्याय और समानता के मुद्दों पर समान ध्यान देने के हकदार नहीं हैं, न ही अप्रवासियों के आगमन की जाँच की जाती है।

कानून व्यवस्था के अलावा, बहु–संस्कृतिक स्कूलों को समर्थन देने के लिए सार्वजनिक निवेश का निम्न स्तर इटली में बहुलवादी शिक्षा की गंभीर नीति की कमी के बारे में अधिक बताता है। इन–कॉमन स्कूल मॉडल पर आधारित एक समावेशी नीति की घोषणा के बावजूद, अंतर–सांस्कृतिक शिक्षा सुधार के लिए कुछ संरचनात्मक निवेश किए गए हैं, और शिक्षकों और स्कूल निदेशकों के लिए विविधता प्रबंधन के लिए कोई व्यवस्थित और व्यापक प्रशिक्षण नहीं दिया गया है। यदि हर साल शिक्षा मंत्रालय उन स्कूलों को धन देता है जो उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों जहाँ अप्रवासी या ड्रॉप आउट रहते हैं में स्थित हैं, ताकि छात्रों को हाशिए पर जाने और जल्दी स्कूल छोड़ने से बचाया जा सके, हालाँकि सिद्धांत और उद्देश्य महत्वाकांक्षी हैं और आवश्यक ठोस कार्रवाई करना मुश्किल है। बहुत कम और अपर्याप्त निवेश है, इसलिए कुछ स्कूलों में परीक्षण और कार्यान्वित किए गए अच्छे अभ्यासों को अन्य स्कूलों में लागू नहीं किया जा सका ।

11.5 अप्रवासी विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक का सांस्कृतिक दृष्टिकोण

इस अस्थिर और भ्रामक मानक ढांचे में, शिक्षक समकालीन बहु–संस्कृतिक परिदृश्य के प्रति दृष्टिकोण विकसित करते हैं, जो न केवल अप्रवासी छात्रों की घटना दर या कानूनी स्वभाव से प्रभावित होते हैं, बल्कि व्यक्तिगत और व्यावसायिक आदतों के विकास के साथ–साथ सांस्कृतिक विविधता और अंतर–सांस्कृतिक आदान–प्रदान के प्रत्यक्ष अनुभव से भी प्रभावित होते हैं। नब्बे के दशक के बाद से क्या बदल गया है, इस पर ध्यान देना सार्थक है, जब विदेशी छात्रों की संख्या बहुत कम थी और अप्रवासियों की सांद्रता वाली

कक्षा में काम करना एक दुर्लभ घटना थी। आजकल इसके बजाय बहु–संस्कृतिक कक्षा में पढ़ाने की संभावना सात गुना बढ़ गई है ।

विभिन्न विद्यालयों पर बहुसंस्कृतिवाद के प्रभाव और ऐसी चुनौतियों का सामना करने में शिक्षकों की वास्तविक क्षमता का आकलन करने के लिए कई सर्वेक्षण किए गए हैं। सर्वेक्षणों से पता चलता है कि शिक्षक आम तौर पर कम से कम दो स्तरों पर उन पर प्रतिक्रिया करते हैं कक्षा में और विद्यालय के भीतर अंतर–जातीय संबंधों का सबसे व्यावहारिक स्तर, जो उन्हें वास्तव में एक सांस्कृतिक मध्यस्थ बनाता है विदेशी छात्र, अप्रवासी परिवार और विद्यालय के वातावरण के बीच, कमोबेश इस तरह से मान्यता प्राप्त है और इस कार्य को बनाए रखने के लिए तैयार है, और शिक्षण में लागू करने के लिए सामग्री के चयन और कक्षा की विविधता को वहन करने के लिए शिक्षाप्रद रणनीतियों के बारे में सबसे सैद्धांतिक स्तर पर विदेशी छात्रों की दर लगभग हर जगह कम होने के बावजूद, अधिकांश शिक्षकों में पाई जाने वाली दुविधा पहले से ही चिंताजनक थी, जो विदेशी छात्रों का स्वागत करने के लिए आतुर थे, लेकिन गैर–नागरिक और समाज के लिए संभावित खतरों के रूप में देखे जाने वाले अप्रवासियों के प्रति सामाजिक दूरी प्रदर्शित करते थे। इसलिए, सहिष्णु शिक्षकों की श्रेणी भी एक जातीय–केंद्रित शिक्षण शैली को अपनाती हुई और सांस्कृतिक एकीकरण के एक आत्मसातवादी दृष्टिकोण का पालन करती हुई प्रतीत हुई, जो अन्य सामाजिक उद्देश्यों पर अपनी स्वयं की पहचान की रक्षा को प्राथमिकता के रूप में मानती है।

11.6 शैक्षिक काम के लिए बहु–संस्कृतिवाद की चुनौती

इसमें कोई संदेह नहीं है कि बहु–संस्कृतिवाद ने पिछले दशकों में कई लोकतांत्रिक संस्थाओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती पेश की है, और इसने अक्सर सांस्कृतिक बहुलवाद के साथ भ्रम पैदा किया है। जैसा कि ऊपर सुझाया गया है, सांस्कृतिक बहुलवाद में मतभेदों को जोड़ने का एक मानक तरीका शामिल है, जबकि बहु–संस्कृतिवाद बहुलता के अस्तित्व को डिजाइन करना उनमें सकारात्मक सह–अस्तित्व की आवश्यकताओं का अभाव है।

11.7 राजनीतिक एवं शैक्षिक बहुलवाद

ऐसा सोचा जा सकता है कि शिक्षा के भीतर बहुसंस्कृतिवाद से संबद्ध किसी अध्याय में मानव प्रजातीय विविधता और शिक्षा के केन्द्र में उसका प्रभाव होना चाहिए। लेकिन एक पल का सोच–विचार ही यह स्पष्ट करने के लिए काफी है कि किसी व्यक्ति या समूह की प्रजातीय पहचान का शिक्षा नीति के सवालों से कुछ विशेष लेना–देना नहीं है। मुद्दा स्वयं में उनकी मानव प्रजाति का नहीं है बल्कि समाज तथा उस राज्य के

साथ एक व्यक्ति या समूह की संस्कृति और मूल्यों के रिश्ते का है, जिसके लिए वे प्रतिबद्ध हैं। इस सवाल को लेकर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में मोटे तौर पर तीन तरह के दृष्टिकोण अपनाए गए हैं।

पहला दृष्टिकोण तो 'प्रजातीय–अलगाव समाप्ति' का, सम्मिलित हो जाने, रच–बस जाने का है। इसका अर्थ है कि अल्पसंख्यक समूहों को मेजबान समुदाय की जीवन–शैली अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए, यहां तक कि इसके लिए दबाव भी बनाया जाए।

दूसरा दृष्टिकोण 'एकीकरण' का, जुड़ाव–मिलान का है। यहां वकालत की जाती है कि अल्पसंख्यक समूह नागरिक मानकों एवं आचार–व्यवहार का पालन करें– जैसे कि कानून, राजनैतिक व्यवस्था और आर्थिक संबंधों का सम्मान साथ ही मेजबान समुदाय की भाषा को भी अपनाएं, कम से कम घरेलू परिस्थिति के बाहर तो जरूर ही। एकीकरण का हिमायती नज़रिया मानता है कि बच्चे चाहें तो परिपक्व होने पर अपने समूह में स्थापित जीवन–शैली से बाहर निकलने का अर्थपूर्ण विकल्प उनके पास मौजूद रहे।

तीसरे नजरिए को कभी–कभी 'बहु–संस्कृतिक' कहा जाता है। बहुसंस्कृतिवाद के समर्थक इस सवाल को लेकर दुविधा में रहते हैं कि अल्पसंख्यकों को मेजबान समाज की प्रथाओं और मूल्यों को अपनाना चाहिए कि नहीं। वे इस दृष्टिकोण की ओर प्रवृत्त रहते हैं कि समुदायों को अपनी जीवन–शैली, जितना वे चाहें, बचा कर रखने का अधिकार है ।

11.8 सारांश

शिक्षा पर चर्चा के संदर्भ में जो इस तरह का है कि नजरिया दो आवश्यक बिन्दुओं को अनदेखा करता है। पहला यह, कि शिक्षा, अपने उस पूर्ण–विकसित समालोचनात्मक संस्करण में भी, जो हम प्रस्तुत कर रहे हैं, शिक्षित किए जा रहे लोगों के 'जीवन के अर्थ के बारे में गहरे से गहरे विश्वासों' को किसी भी गम्भीर तौर पर खण्डित नहीं कर सकती। क्योंकि हमारी समझ में शिक्षा ऐसे अर्थ के बारे में चुनाव कर पाने की तैयारी है, जिसके चलते यह पहले से मान कर चलती है कि शिक्षित किए जा रहे व्यक्तियों ने अब तक तार्किक तौर पर इस क्षेत्र में चुनाव किया नहीं है। दूसरा, इस बात की बिल्कुल भी कोई गारण्टी नहीं दी जा सकती कि जिन्हें शिक्षित किया जा रहा है, उनके अभिभावकों के सामान्य तौर पर उनके सांस्कृतिक समूह के पूरी तरह से रूप–आकार ले चुके पक्के विश्वास जीवन के अर्थ के उस प्रारूप या संस्करण को शामिल नहीं करेंगे जो उनके बच्चों के शिक्षित होने को रोकता हो या उस शिक्षा को नकारे जिसकी वकालत हम कर रहे हैं या उस शिक्षा के पहलुओं को नकारे, उदाहरण के तौर पर, जेण्डर–समानता के लिए उसकी प्रतिबद्धता। यानी यह संभव है कि अभिभावक और उनके सांस्कृतिक समूह के विश्वास मोटे तौर पर या तो

अपने बच्चों की शिक्षा के ही पक्ष में न हों या किसी विशेष तरह की शिक्षा के या उसके कुछ पहलुओं के पक्ष में न हों,। और हमें लगता है कि इस तरह के लोग यह बताए जाने से शान्त नहीं हो जाएंगे कि ऐसी शिक्षा उनके लिए नहीं बल्कि बच्चों के लिए है, जिन्हें बस उनके बदले उनका स्थान लेने वालों के रूप में, नहीं देखा जाना है।

आधुनिक समाजों की बहु–संस्कृतिक छवि, सूचना युग की हकीकत है। विद्यालयों को इस तथ्य से अलग नहीं किया जा सकता। विद्यालयों को अपने विविध विद्यार्थियों को अपनी क्षमता का भरसक लाभ उठाने के योग्य बनाने और उन्हें इसके लिए सशक्त करने की दृष्टि से, विद्यालयों को बहु–संस्कृतिक एवं बहुलवादी संस्कृति को अपनाना होगा। इस संदर्भ में, मुख्याध्यापक / मुख्याध्यापिका की यह जिम्मेदारी है कि वह विद्यालय में मूल्य के रूप में व्याप्त बहुसंस्कृतिवाद को बनाए रखें और प्रबंधन संबंधी ऐसे विशिष्ट घटकों को लागू करें जो विद्यालय में इसे निरंतर कायम रख सकें। अध्यापकों को विशिष्ट संस्कृतियों की समझ को विकसित करने के लिए, कुछ विशिष्ट अध्ययन–अध्यापन रणनीतियों को लागू करना होगा। इस प्रयास में विद्यार्थियों और अभिभावकों को शामिल करना भी ज़रूरी है ताकि नृजातीय, सांस्कृतिक और जातीय संबंधी अंतर, विद्यार्थी अधिगम एवं उपलब्धि की राह में अवरोध उत्पन्न सिद्ध न हों।

11.9 बोध प्रश्न

1. अप्रवासी विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक की सांस्कृतिक दृष्टिकोण की विस्तृत विवेचना कीजिये।
2. बहु–संस्कृतिवाद क्या है?
3. बहु–संस्कृतिवाद के प्रकार की विवेचना कीजिये।
4. बहु–संस्कृतिवाद की विशेषताएँ विवेचना कीजिये।

11.10 सन्दर्भ सूची

- Banks J. A. (ed.), The Routledge International Companion to Multicultural Education, New York: Routledge, 2009.
- Besozzi E. , Società, cultura e educazione, Carocci Roma, 2006.
- Blangiardo G. C., Cesareo V. (a cura di), Indici di integrazione. Un'indagine sulla realtà migratoria italiana, FrancoAngeli, Milano, 2009.

- Bobbio N., Il futuro della democrazia, Einaudi, Torino, 1991.
- Chaloff J., Queirolo Palmas L. (eds.), Scuole e migrazioni in Europa. Dibattiti e prospettive, Carocci, Roma, 2004.
- Dahl R., Democracy and its critics, Yale University Press, Yale, 1989.
- Dewey J., Democracy and education, McMillan, New York, 1916.
- Fravega E., Queirolo Palmas L. (a cura di), Classi meticce. Giovani, studenti, insegnanti nelle scuole delle migrazioni, Carocci, Roma, 2003.
- Gillmor D., Delgado R., Racism and education: coincidence or conspiracy?, Routledge, London,2008
- Giovannini G. (a cura di), Allievi in classe, stranieri in città. Una ricerca sugli insegnanti di scuola elementare di fronte all'immigrazione, Angeli, Milano, 1996.
- Kymlicka, Will, Multicultural Citizenship, Clarendon Press, Oxford, 1995.
- May S., Sleeter C. E. (eds), Critical Multiculturalism. Theory and Praxis, Routledge, London, 2010.

इकाई-१२ भारत में शिक्षा व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 भारत में शिक्षा प्रणाली की भूमिका

12.3 भारतीय शिक्षा प्रणाली का इतिहास

12.4 स्वतंत्रता के बाद बने शिक्षा आयोग

12.5 भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली

12.6 भारत में शिक्षा के प्रकार

- 12.6.1 औपचारिक शिक्षा
- 12.6.2 अनौपचारिक शिक्षा
- 12.6.3 भारत में दूरस्थ शिक्षा

12.7 भारत में शैक्षिक प्रणाली के लिए चुनौतियाँ

12.8 सारांश

12.9 बोध प्रश्न

12.10 सन्दर्भ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप जान सकेंगे।

- भारतीय शिक्षा प्रणाली के इतिहास को आप जान सकेंगे।
- भारत में शिक्षा प्रणाली की भूमिका को आप समझ सकेंगे।
- भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली व्यवस्था को आप समझ सकेंगे।
- शिक्षा के महत्वपूर्ण प्रकार को आप जान सकेंगे।
- भारत में शैक्षिक प्रणाली की चुनौतियाँ को आप समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

भारत में, औपचारिक शिक्षा प्रणाली में पाँच साल की प्राथमिक स्कूली शिक्षा, उसके बाद तीन साल की मिडिल स्कूल और दो साल की हाई स्कूल शामिल होती है। हाई स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद छात्र किसी विश्वविद्यालय या कॉलेज में उच्च्व शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। भारत में शिक्षा का अत्यन्त पुराना इतिहास है। नालंदा विश्वविद्यालय विश्व में सबसे पुराना विश्वविद्यालय था। वर्तमान में यहाँ शिक्षा मुख्यतः सार्वजनिक संस्थानों से प्रदान की जाती है जिसमें नियंत्रण एवं वित्तपोषण तीन स्तरों से आता है केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय निकाय।

भारतीय शिक्षा पद्धति वह शिक्षा पद्धति जिसका उपयोग तक्षशिला व नालंदा विश्वविद्यालय जैसे विश्वविद्यालय करते थे, वह विद्यालय जिसने भारत को वाराहमिहिर, भास्कराचार्य, बाणभट्ट, आर्यभट्ट तथा चाणक्य जैसे महानतम विद्वान प्रदान किए हैं। भारत की शिक्षा पद्धति की छाप व चमक इतनी थी कि प्राचीनकाल मे विदेशों से अगणित विद्यार्थी विद्यार्जन के लिए आते थे। यहाँ तक कि विदेशी तीर्थ यात्रियों में से मेगास्थनीज, फाहयान, हवेनसांग आदि का भारत आने का एक कारण यहा से ज्ञान अर्जित करना भी था। अलबनी वस्तुत भारत के महान ग्रंथों का अध्ययन करके उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ था। परंतु महमूद गजनवी के आदेश के अनुसार तथा इन ग्रन्थों की भावना, संस्कृत भाषा समझ न पाने के कारण वह उनके छिद्रान्वेषण की ओर उन्मुख हो गया परंतु फिर भी वह इन ग्रंथो व भारत की शिक्षा की प्रशंसा करने से स्वयं को रोक न सका । वस्तुतः भारतीय शिक्षा अत्यत महान तथा प्राचीनतम शिक्षा व्यवस्था है।

भारतीय शिक्षा पद्धति प्राचीन काल में अत्यंत समुन्नत व उत्कृष्ट थी। प्राचीन शिक्षा वस्तुतः गुरुकुल शिक्षा पद्धति थी। विद्यार्थी अपने घर से दूर अपने गुरु या गुरुओं के आश्रम अर्थात गुरुकुल मे रहकर विद्याध्ययन करते थे। जिनसे शिक्षा ग्रहण किया जाता था उसे आचार्य एवं गुरु कहा जाता था तथा छात्र को अतेवासी, ब्रह्मचारी कहा जाता था। गुरु–शिष्य परंपरा हिंदू धर्म में ही नहीं, वरन जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म आदि मे भी है। अतएव प्राचीन काल में भारत को विश्व गुरु कहा जाता था । वस्तुतः यह शिक्षा मनुष्य को न केवल जीवन के यथार्थ का दर्शन कराती थी, वरन यह शिष्य को इस योग्य बनाती थी कि वह भवसागर की बाधाओं को पार करके अंत मे मोक्ष को प्राप्त कर सके ।

12.2 भारत में शिक्षा प्रणाली की भूमिका

भारत में शिक्षा प्रणाली लाखों छात्रों के जीवन और भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अपने समृद्ध इतिहास और विविध संस्कृति के साथ, भारत में एक जटिल और विशाल शैक्षिक परिदृश्य है। भारत में शिक्षा प्रणाली (Education system in India) के अंतर्गत पूर्व–प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा सहित विभिन्न चरण शामिल हैं। महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। इसके अतिरिक्त, रटकर सीखने और परीक्षा–केंद्रित मूल्यांकन विधियों पर जोर देने की अक्सर आलोचना की जाती है। शिक्षा प्रणाली को आधुनिक बनाने और व्यावसायिक प्रशिक्षण शुरू करने के प्रयास किए जा रहे हैं। भारत में शिक्षा क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव की जरूरत है। यदि हमें सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करना है और सही दिशा में आगे बढ़ना है तो कई पहलुओं पर काम करना आवश्यक है। हमारी आजादी के बाद से ही शिक्षा क्षेत्र में कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन्होंने हमें दुनिया में एक विकसित राष्ट्र बनने से रोक दिया है। भारत में एक सभ्य शिक्षा प्रणाली के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं से देखा जा सकता है । शिक्षा दृष्टि और दृ ष्टिकोण को बढ़ाती है, जिससे समाज में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा होती है। इससे सामाजिक न्याय के क्षेत्र में प्रगति करने की इच्छा भी बढ़ती है, अन्याय, भ्रष्टाचार, हिंसा, असमानता और सांप्रदायिकता आदि से लड़ने की क्षमता बढ़ती है। शिक्षा एक ऐसे लोकतंत्र को सुनिश्चित करती है जिसमें एक सभ्य और सुसंस्कृत समाज शामिल हो। यह आर्थिक रूप से वंचित समूहों के उत्थान में भी मदद करता है और कई नौकरी और रोजगार के अवसरों का निर्माण सुनिश्चित करता है। एक सभ्य शिक्षा प्रणाली विचारों, ज्ञान और अच्छी प्रथाओं का शांतिपूर्ण आदान–प्रदान सुनिश्चित करती है। यह अपराध और आतंकवाद को कम करने में मदद करता है; इस प्रकार, कानून और व्यवस्था के मुद्दों को नियंत्रण में रखा जाता है। एक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करने के साथ–साथ भाईचारे की भावना को बढ़ाने में मदद करती है। दुनिया का कोई भी देश अच्छी शिक्षा प्रणाली के बिना तेज और लगातार आर्थिक विकास हासिल नहीं कर सकता है।

12.3 भारतीय शिक्षा प्रणाली का इतिहास

भारतीय शिक्षा प्रणाली का इतिहास ना केवल शिक्षा का इतिहास है बल्कि यह भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है। भारतीय शिक्षा प्रणाली का इतिहास समृद्ध विरासत से पूर्ण है। भारत ऐतिहासिक काल सें विश्व गुरु कहलाता था। यहां शिक्षा व्यवस्था प्रारंभ से ही रही है तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालय को शिक्षा प्रणाली के सर्वप्रथम उदाहरण के रुप में देखा जाता है। 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व से ही शिक्षा के रुप में विश्वविद्यालयों का निर्माण शुरु हो चुका था। हालांकि भारत में शिक्षा का इतिहास नालंदा से शुरू नहीं हुआ है, लेकिन यह प्राचीन भारत में सबसे अच्छी तरह से प्रलेखित संस्थानों में से एक है। व्यापार और अन्वेषण के कारण पारंपरिक तरीके से शिक्षण को धीरे–धीरे आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बदल दिया गया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली 20 वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई थी। जिसमें पश्चिमी शैली और पश्चिमी सामग्री एवं प्रभाव को देखा जा सकता है। भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना बॉम्बे, कलकत्ता और मद्रास में की गई जो ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के तर्ज पर तैयार किए गए थे।

भारत में स्कूली शिक्षा प्रणाली बहुत बड़ी और जटिल है। इसकी देख–रेख तीन राष्ट्रीय निकाय करते हैं अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद। इनके अलावा, प्रत्येक राज्य का अपना शिक्षा विभाग या मंत्रालय होता है, जो अपने अधिकार क्षेत्र में स्कूली शिक्षा को नियंत्रित करता है ।

I. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक वैधानिक निकाय है जो भारत में विश्वविद्यालयों को मान्यता प्रदान करता है। यह पात्र विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है। यूजीसी की स्थापना 1956 में हुई थी और वर्तमान में इसके 56 सदस्य हैं।

II. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) एक स्वायत्त संगठन है जो भारत सरकार को शिक्षा नीति पर सलाह देता है। इसकी स्थापना 1961 में हुई थी और इसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। जो पाठ्यपुस्तकें, शिक्षक प्रशिक्षण सामग्री और शोध पत्रिकाएँ विकसित करता है।

III. भारत में स्कूली शिक्षा तीन साल की उम्र से ही प्री–प्राइमरी स्कूल से शुरू हो जाती है। प्री–प्राइमरी स्कूल अनिवार्य नहीं है और यह औपचारिक शिक्षा प्रणाली का हिस्सा नहीं है। प्री–प्राइमरी चरण के बाद पाँच साल की प्राथमिक स्कूली शिक्षा होती है, जिसे दो साल और तीन साल के दो चक्रों में

विभाजित किया जाता है। प्राथमिक विद्यालय पूरा होने के बाद, बच्चे या तो मिडिल स्कूल या हाई स्कूल में जा सकते हैं। मिडिल स्कूल में कक्षा 6 से 8 तक की कक्षाएँ शामिल हैं, जबकि हाई स्कूल में कक्षा 9 से 10 तक की कक्षाएँ शामिल हैं। हाई स्कूल सफलतापूर्वक पूरा करने के बाद, छात्र विश्वविद्यालय या कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

IV. भारत में तकनीकी शिक्षा को विनियमित करने के लिए जिम्मेदार है। इसकी स्थापना 1945 में भारत सरकार के सलाहकार निकाय के रूप में की गई थी और 1987 में यह एक वैधानिक निकाय बन गया। भारत में तकनीकी और प्रबंधन शिक्षा के लिए मान्यता प्राप्त और अनुमोदित संस्थान है।

12.4 स्वतंत्रता के बाद बने शिक्षा आयोग

- राधाकृष्ण आयोग 1948–49
- माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर आयोग) 1953
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग 1953
- कोठारी शिक्षा आयोग 1964
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968
- नवीन शिक्षा नीति (1986) आदि के द्वारा भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समय–समय पर सही दिशा देनें की कोशिश की गयी।

12.5 भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली

विभिन्न साक्ष्यों यथा साहित्यों, शिलालेखों, प्रशस्तियों और विदेशी यात्रियों के वर्णनों के आधार पर भारत की बदलती सामाजिक व्यवस्था के अनुसार शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन को घटित होते हुए स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अतः भारतीय शिक्षा प्रणाली को किसी एक काल खण्ड के आधार पर वर्णित करना एकांगी होगा। बाह्य संस्कृतियों के संक्रमण और यहाँ की विविधतापूर्ण लोक–संस्कृति ने विश्व में भारतीय शिक्षा प्रणाली को अद्वितीय होने में सहायता प्रदान की है। यहाँ भाषाओं की भिन्नता होने के कारण भारत के अलग–अलग हिस्सों में शिक्षा के अलग–अलग रूप देखने को मिलते हैं, लेकिन उन सबका आधार वसुधैव कुटुम्बकं को ही चरितार्थ करने वाला है।

भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली की प्राचीन ऋग्वैदिक काल से चली आ रही एक समृद्ध विरासत है। प्राचीन शिक्षा गणित में दी जाती थी। बाद के समय में विषयों में बौद्ध साहित्य, पाली व्याकरण, तर्कशास्त्र और

सामाजिक मूल्य शामिल थे। ब्राह्मण गुरु शुल्क लेकर शिक्षा प्रदान करते थे।मंदिर और स्तूप शैक्षिक केंद्र के रूप में कार्य करते थे। मध्यकाल में मकतब और मदरसे जैसी इस्लामी संस्थाओं ने भूमिका निभाई। ईस्ट इंडिया कंपनी ने शुरू में भारत में अपने शासन के दौरान शिक्षा को बढ़ावा देने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। यूरोपीय देशों के मिशनरियों ने पश्चिमी शिक्षा की शुरुआत में योगदान दिया। शिक्षा में सुधार के लिए हंटर कमीशन और सार्जेंट कमीशन जैसे आयोगों की स्थापना की गई।

भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से आज़ादी मिलने के बाद शिक्षा प्रणाली में सुधार हुए। भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है–

- पूर्व–प्राथमिक,
- प्राथमिक,
- माध्यमिक, और
- उच्च शिक्षा।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 6–14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाता है।
- भारत में उच्च शिक्षा में स्नातक, स्नातकोत्तर और पीएचडी स्तर शामिल हैं।
- राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान देश भर के उच्च शिक्षा संस्थानों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का समर्थन करता है।

12.6 भारत में शिक्षा के प्रकार

भारत में शिक्षा के दो प्रकार हैं औपचारिक और अनौपचारिक। औपचारिक शिक्षा स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में दी जाती है जो एक निर्धारित पाठ्यक्रम का पालन करते हैं। अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा प्रणाली के बाहर प्रदान की जाती है और किसी निर्धारित पाठ्यक्रम का पालन नहीं करती है। इसमें प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशालाएँ और इंटर्नशिप शामिल हैं।

12.6.1 औपचारिक शिक्षा

औपचारिक शिक्षा स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में दी जाती है जो एक निर्धारित पाठ्यक्रम का पालन करते हैं। भारत में, औपचारिक शिक्षा प्रणाली में पाँच साल की प्राथमिक स्कूली शिक्षा, उसके बाद तीन साल की मिडिल स्कूल और चार साल की हाईस्कूल एवं इण्टरमीडिएट शिक्षा शामिल है। इण्टर पास करने के बाद छात्र विश्वविद्यालय या कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

12.6.2 अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा प्रणाली के बाहर प्रदान की जाती है और किसी निर्धारित पाठ्यक्रम का पालन नहीं करती है। इसमें प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशालाएँ और इंटर्नशिप शामिल हैं। अनौपचारिक शिक्षा उन छात्रों के लिए फायदेमंद हो सकती है जो ऐसे विशिष्ट कौशल या ज्ञान सीखना चाहते हैं जो औपचारिक शिक्षा प्रणाली में शामिल नहीं हैं। यह उन छात्रों के लिए भी मददगार हो सकता है जो कार्यबल में प्रवेश करने से पहले कार्य अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं।

12.6.3 भारत में दूरस्थ शिक्षा

भारत में दूरस्थ शिक्षा भी बेहद लोकप्रिय है। दूरस्थ शिक्षा में शिक्षक और छात्र आमतौर पर एक ही शहर या क्षेत्र में मौजूद नहीं होते हैं। समय के अभाव एवं रोजाना कॉलेज ना जा पाने की अक्षमता के कारण दूरस्थ शिक्षा बहुत प्रसिद्ध हुई है। देश के ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग सिस्टम में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू), स्टेट ओपन यूनिवर्सिटी (यूपीआरटीओयू) संस्थान और विश्वविद्यालय लगभग सभी धाराओं में विभिन्न पाठ्यक्रमों की पेशकश करते हैं और इसमें पारंपरिक दोहरे मोड विश्वविद्यालयों में पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान शामिल हैं। दूरस्थ शिक्षा उन छात्रों के लिए लाभकारी और पंसदीदा है, जिन्हें स्कूल या कॉलेज छोड़ना पड़ता है और जो काम करते समय शिक्षा जारी रखना चाहते हैं। ऐसे छात्रों के लिए दूरस्थ शिक्षा किसी वरदान से कम नहीं है ।

12.7 भारत में शैक्षिक प्रणाली के लिए चुनौतियाँ

भारतीय परिदृश्य में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच एक बड़ी बाधा है। उचित बुनियादी ढांचे की कमी और शिक्षा के प्रति समाज के कई वर्गों में कम उत्साह के कारण भारत में शिक्षा के लक्ष्य पूरे नहीं हो पाते हैं। शिक्षा प्रणाली में कुछ चुनौतियाँ हैं जिनके कारण भारत सर्वच्च विकास को पूरा करने में सक्षम नहीं है।

- शिक्षक–छात्र अनुपात में जारी यूनेस्को की भारत के लिए शिक्षा स्थिति रिपोर्ट के अनुसार, स्कूलों में लाखों शिक्षण पद खाली हैं। इस प्रकार स्पष्ट रूप से शिक्षकों की कमी है, जिसका असर छात्रों को दी जाने वाली शिक्षा पर पड़ रहा है।
- बुनियादी ढांचे की कमी खराब स्वच्छता, पीने के पानी की सुविधा, शौचालय, बिजली, खेल के मैदान आदि की कमी जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रमुख खामियों में से एक है।

- ❖ महँगी शिक्षा भारत में विशिष्ट संस्थान और कॉलेज बहुत महँगे हैं, जहाँ कुछ पाठ्यक्रमों के लिए उच्च शिक्षा भारत के सामान्य व्यक्ति की पहुँच से भी बाहर है।
- ❖ क्षेत्रीय भाषाओं की उपेक्षा जो छात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि, सरकारी स्कूलों से हैं, और जो अंग्रेजी भाषा में पारंगत नहीं हैं, उन्हें ज्ञान प्राप्त करने और अवधारणाओं को समझने में बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है।
- ❖ व्यावहारिक ज्ञान का अभाव शिक्षा का पुराना पाठ्यक्रम मुख्य रूप से सिद्धांतों और अवधारणाओं को रटने पर केंद्रित था जबकि व्यावहारिक क्षेत्र पर कम जोर दिया जाता था।
- ❖ प्रतिभा पलायन मुद्दा मेधावी छात्रों का दूसरे देशों में प्रवास एक ऐसा मुद्दा है जहां छात्रों को अगर देश में अवसर और योग्य पद नहीं मिलते हैं, तो वे रोजगार की तलाश में दूसरे देशों में चले जाते हैं।

12.8 निष्कर्ष

प्राचीन भारत में शिक्षा का बीजारोपण वैदिक काल में ही हो गया था। वैदिक कालीन शिक्षा तत्कालीन दार्शनिक चिन्तन पर आधारित थी। इस चिन्तन में जीव और ब्रह्म; जीवन और मृत्यु; लोक और परलोक इत्यादि विषयों की प्रधानता थी। इन सभी विषयों में व्यक्ति को प्रमुख स्थान दिया जाता था। अतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक शिक्षा अथवा प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का केन्द्र में रखकर प्रदान की जाती थी। प्राचीन काल में स्त्री.शिक्षा की उत्तम व्यवस्था थी। ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर चुकी शिक्षिता स्त्री को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश का अधिकार मिल जाता था। अदिति, उषा, इन्द्राणी, इडा, भारती, श्रद्धा, कद्रु, सावित्री, गार्गी , घोषा, अपाला इत्यादि स्त्रियों का नाम स्त्री.शिक्षा के प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया जा सकता है। वैदिक काल में शिक्षण संस्थाओ का भी उल्लेखनीय विकास हो चुका था। टोल, चरण, घटिका, गुरुकुल, परिषद्, विद्यापीठ, विशिष्ट विद्यालय, मन्दिर महाविद्यालय, ब्राह्मणीय महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की एक पूरी शृंखला हुआ करती थी जहाँ विद्यार्थी अपने सामर्थ्य के अनुसार निःशुल्क शिक्षा प्राप्त कर सकते थे ।

हमारी शिक्षा प्रणाली में प्रगति के बदले आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। शिक्षा हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास में प्रगति की कुंजी है। जब इस दिशा में विकास होगा तभी हम विकसित भारत के सपनों को साकार कर सकेंगे। हमें उम्मीद है कि इस लेख को पढ़ने के बाद भारत में शिक्षा प्रणाली से संबंधित आपके सभी संदेह दूर हो गए होंगे।

12.9 बोध प्रश्न

1. शिक्षा के महत्वपूर्ण प्रकार को बताते हुये टिप्पणी लिखिए
2. आधुनिक शिक्षा प्रणाली की व्याख्या कीजिये
3. शिक्षा प्रणाली की निंम्न चुनौतियाँ को बताइये

12.10 सन्दर्भ सूची

- लाल (डॉ0) रमन बिहारी, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समाचार, राज प्रिंटर्स, मेरठ।
- जे0 (डॉ0) एस. वालिया (2009) भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, अहमदपाल पब्लिशर्स, मेरठ।
- शुक्ला (डॉ0) सी. एस. (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
- शर्मा, रामनाथ वी शर्मा, राजेन्द्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- शीलू मैरी (डॉ0) (2008) शिक्षक के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य,रजत प्रकाशन नई दिल्ली।
- द्विवेदी, डॉ0 कपिलदेव, (2000) 'वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
- जयसवाल, डॉ0 सीताराम, 'भारतीय शिक्षा का इतिहास तथा समस्यायें, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।
- https://testbook.com/hi/ias-preparation/education-system-in-india
- https://testbook.com/hi/ias-preparation/indian-education-system-problems-and-challenges
- https://hi.wikipedia.org/wiki/
- https://www.researchgate.net/publication/335442583_bharatiya_siksa_vyavastha_vaidika_kala_se_adhunika_kala_taka